भिक्खु वग्गो

THE MENDICANT

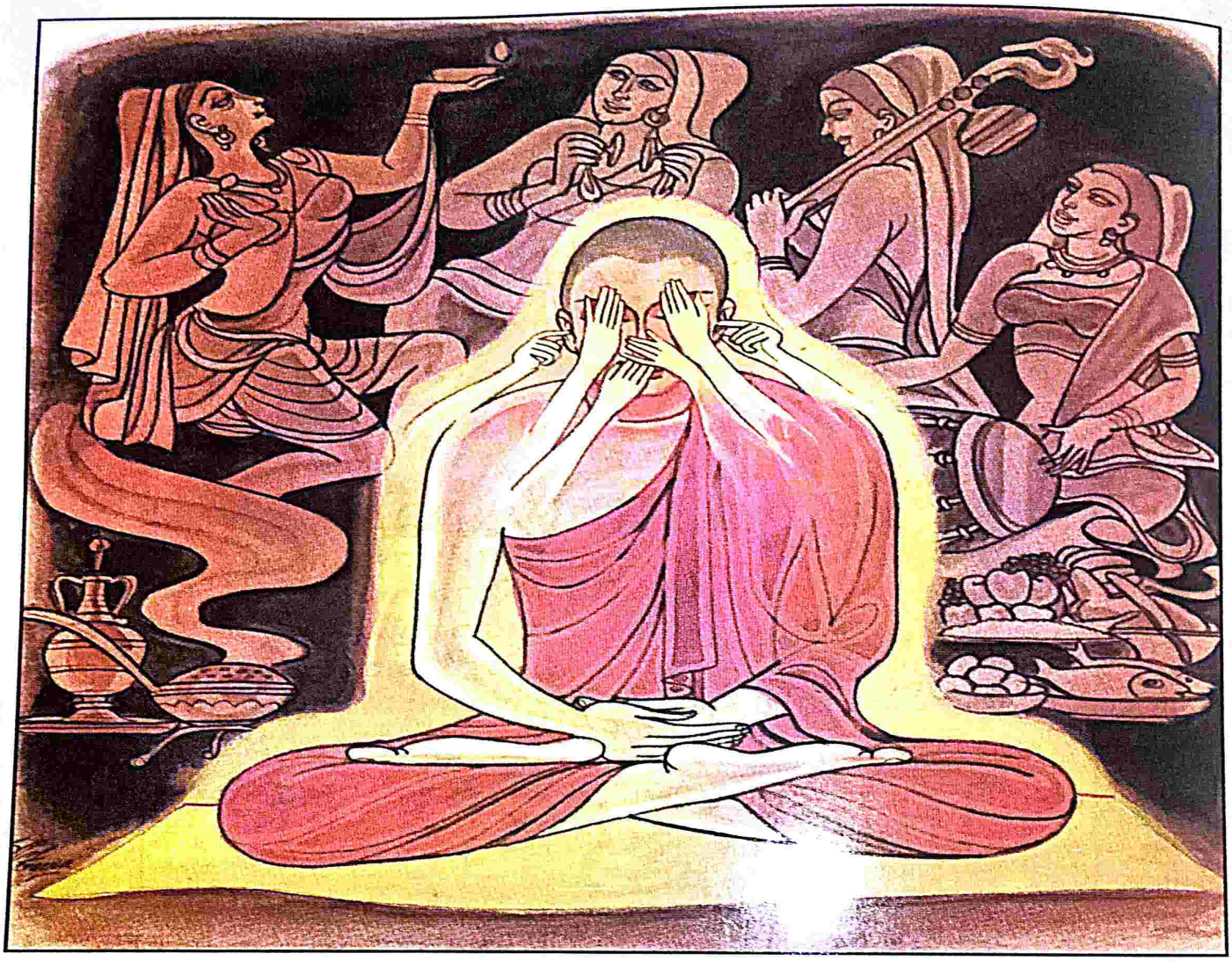

चक्खुना संवरो साधु, साधु सोतेन संवरो।
घाणेन संवरो साधु, साधु जिह्वाय संवरो।।

अर्थ : आंख का संवर (=संयम) भला है, भला है कान का संवर, घ्राण का संवर भला है, भला है जीभ का संवर।

संगति करो, सेवा सत्कार की वृत्तिवाला बनो और व्यवहार कुशल बनो। ऐसा होकर दुःखों का नाश करो। ठीक उसी प्रकार से जैसे जुही अपने फूलों को त्याग देती है, वैसे ही राग द्वेष रूपी कोमल-कोमल फूलों को भिक्खु भी त्याग दे। वह शान्त चित्त, शान्त वाक्, शान्तमना बन जाये और इस प्रकार भली प्रकार से समाहित चित्त हो सांसारिक प्रलोभनों को त्यागते हुए अपने आपको 'उपशान्त' कर ले। इसकी प्रेरणा या ऊर्जा और कहीं से जागने वाला नहीं है, यह अपने से ही जगेगा, अपने से ही खिलेगा। अपने को प्रेरित करो—अपने आप, अपने को संलग्न करो— अपने आप और बन जाओ— सुरक्षित, स्मृतिवान अर्थात भिक्खु।

यह अपने लिए बड़े लाभ की वस्तु है। इसमें रमण करो, इसका अनुसरण करो। आंख, कान, नाक, काय और मन सब तरह से संयत बनो। अगर ऐसे बन गए, तो दुःख से छूट गए, तृष्णा से छूट गए, राग से छूट गए, द्वेष से छूट गए, मोह से छूट गए, द्वेष से परे हो गए और बन गए—भिक्खु ! अनागार ! और खत्म हो गयी नाग-रूपी संसार में आसक्त ममता। यह तभी सम्भव है जब अपने इन अकुशल धर्मों से भरी जीवन नैया को उलीच दें, खाली कर दें। स्कन्धों से विहीन, संस्कारों से शून्य, बिलकुल घटीर्ण। भिक्खु का ऐसा रूप दर्शाती ये गाथाएं हमें जाग्रत करती हैं और कहती हैं कि ऐसे प्रमोद को पाने का प्रयत्न जितना जल्दी करेंगे, उतना ही हमारे लिए अच्छा है। युवावस्था में अपने को 'बुद्ध शासन' में लगाना तो ठीक वैसा ही है, जैसा बादलों से मुक्त हुआ चन्द्रमा। अस्तु, अपना स्वामी स्वयं बनें, स्वयं की शरण ग्रहण करें, अपने को संयत करें, ठीक वैसे ही जैसे व्यापारी उत्तम घोड़े को करता है।

इस वर्ग में कुल 23 गाथाओं का संकलन किया गया है, जिनमें से एक गाथा पुब्बाराम विहार से व 2 गाथाएं वेणुवन से सम्बंधित हैं। बाकी 20 गाथाएं जेतवन विहार से सम्बंधित हैं। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने इन गाथाओं में से 15 गाथाओं को अपने महान ग्रन्थ 'भगवान बुद्ध और उसका धम्म' में उद्धृत किया है।

25. भिक्खु वग्गो

2. गाथाएं

वग्ग 25, गाथा 1-2

संवर से सर्वत्र दुखों से मुक्ति

(पांच भिक्खुओं की कथा, स्थान—जेतवन)

360-361. भगवान के जेतवन में विहरते समय पांच ऐसे भिक्खु थे, जो पंचेन्द्रियों में से एक-एक का संवर करते थे। कोई आंख का, कोई कान का, कोई जीभ का....। एक दिन उन पांचों में बहुत विवाद हो गया कि किसका संवर कठिन है। प्रत्येक अपने स्वर को कठिन और फलतः श्रेष्ठ मानता था। उनमें यह बात तय नहीं हो पायी कि किसका संवर (संयम) करना कठिन है। विवाद की निष्पत्ति होते न जान कर वे अन्ततः भगवान के पास गए और उनसे पूछा, "भन्ते ! इन पांच इन्द्रियों में से किसका संवर दुष्कर है ?"

भगवान तब बोले, "भिक्खुओ ! संवर (संयम) दुष्कर है। संवर कठिन है। इसका संवर या उसका संवर नहीं, संवर ही दुष्कर है। इन सब का संवर ही दुष्कर है। भिक्खुओ ! ऐसे व्यर्थ के विवादों में नहीं पड़ना चाहिए, क्योंकि विवाद मात्र के मूल में अहंकार छिपा है। इसलिए विवाद की कोई निष्पत्ति नहीं हो सकती है। विवादों में शक्ति व्यय न करके समग्र शक्ति संवर में लगाओ। सभी संवर-द्वारों का संवर करो। संवर में दुख मुक्ति का उपाय है। संवर नाम है— नियन्त्रण का,

संयम का, समता का, सम्यकत्व का, सम्बोधि का। चित्त को नियन्त्रण में करो, संयम करो, उसे समता भाव में लाओ, उसमें सम्यकत्व लाओ, सम्बोधि को प्राप्त करो। बिना लोभ के, बिना मद के और बिना हेतु के तुम्हें दिखायी पड़ेगा कि क्या व्यर्थ है और क्या सार्थक है। क्या असार है और क्या सार है और तुम असार को असार की तरह और सार को सार की तरह जान लोगे और मुक्त हो जाओगे।"

आंख का संवर शुभ है, साधु बनाता है व्यक्ति को, भला है कान का संवर। घ्राण का संवर भी शुभ है और जीभ का संवर भी भला है। शरीर का संवर भी शुभ है। मन का संवर शुभ है। सर्वेन्द्रियों का संवर शुभ है। सर्वत्र संवरयुक्त भिक्खु सारे दुखों से मुक्त हो जाता है।" ऐसा कहते हुए भगवान ने तक्षशिला जातक की देशना दी एवं उसका मेल बिठाते हुए जेतवन में ये गाथाएं कहीं—

360. चक्खुना संवरो साधु, साधु सोतेन संवरो।
घाणेन संवरो साधु, साधु जिह्वाय संवरो।। 25.1।।

***अर्थ** : आंख का संवर (=संयम) भला है, भला है कान का संवर, घ्राण का संवर भला है, भला है जीभ का संवर।*

361. कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो।
मनसा संवरो साधु, साधु सब्बत्थ संवरो।
सब्बत्थ संवुतो भिक्खु, सब्बदुक्खा पमुच्चति।। 25.2।।

***अर्थ** : शरीर का संवर भला है, भला है वचन का संवर, मन का संवर भला है, भला है सर्वत्र (इन्द्रियों) का संवर। सर्वत्र संवर-युक्त भिक्खु सारे दुखों से मुक्त हो जाता है।*

शब्दार्थ : **चक्खुना संवरो** = आंख का संयम। **साधु** = भला है। **सोतेन संवरो** = कान का संयम। **घाणेन संवरो** = घ्राण यानी नाक का संयम। **जिह्वाय संवरो** = जीभ का संयम। **कायेन संवरो** = शरीर का संयम। **वाचाय संवरो** = वाणी का संयम। **मनसा संवरो** = मन का संयम। **सब्बत्थ** = सर्वत्र। **संवरो** = संयम। **सब्बत्थ संवरो** = सभी स्थानों एवं सब तरह के संयम। **सब्ब** = सब। **दुक्खा**=दुखों से। **पमुच्चति** = मुक्त हो जाता है।

वग्ग 25, गाथा 3

संयमी ही भिक्खु है

(हंस को मारने वाले भिक्खु की कथा, स्थान—जेतवन)

362. एक समय दो तरुण भिक्खु अचिरावती नदी के किनारे जा नहाकर धूप ले रहे थे। उस समय आकाश में हंसों का एक झुण्ड उड़ता हुआ जा रहा था। उनमें से एक भिक्खु कंकड से निशाना लगाने में बड़ा प्रवीण था, वह चलते हुए, घूमते हुए और उड़ते हुए साध्य का निशाना भी साध लेने में प्रवीण था। इन हंसों को उड़ता हुआ देखकर उनमें से एक ने कहा, "मैं इसकी आंख का लक्ष्य बना सकता हूं।" दूसरे ने कहा— "यह नहीं हो सकता।" इस प्रकार उनमें वार्ता

हुई और उस भिक्खु ने एक कंकड उठाकर एक हंस की आंख में मारा, जो उसकी दोनों आंखों को छेदता हुआ बाहर निकल गया। हंस करहाने की आवाज करता हुआ, फड़फड़ाता हुआ भूमि पर आ गिरा।

भिक्खुओं ने उस भिक्खु की इस क्रिया की बहुत निन्दा की और जेतवन विहार में जाकर भगवान को बताया। भगवान ने उस भिक्खु को बुलाकर नाना प्रकार से डांटते हुए कहा, "भिक्खु ! क्यों तूने ऐसे धर्म में प्रव्रजित होकर जीवहिंसा की ? तुझे संकोच मात्र भी नहीं हुआ। तूने बहुत बड़ा अपराध किया है। भिक्खु को हाथ, पैर और वचन से संयत होना चाहिए। एक-एक कदम होशपूर्वक उठाना चाहिए। बोलते समय भी संयम से बोलना चाहिए।" ऐसा कहते हुए भगवान ने कुरु धम्म जातक का उपदेश देते हुए बताया कि जिसके हाथ, पैर और वचन में संयम है, जो उत्तम संयमी है, जो घर के भीतर (आध्यात्म) रत, समाधियुक्त, अकेला और सन्तुष्ट है, उसे भिक्खु कहते हैं।

"जिसके हाथ, पैर और वचन में संयम है, जो उत्तम संयमी है, जो आध्यात्मरत है, जो अपने में लीन है, समाहित है। सब तरह से अपने में ठहरा हुआ है, सब तरह से अपने में स्थिर है, सब तरह से अपने में प्रतिष्ठित, अकेला और सन्तुष्ट है, उसे भिक्खु कहते हैं।" भगवान ने यह गाथा कही—

362. हत्थसञ्ञतो पादसञ्ञतो, वाचाय सञ्ञतो सञ्ञातुत्तमो।
अज्झत्तरतो समाहितो, एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खुं।। 25.3।।

अर्थ : जिसके हाथ, पैर और वचन में संयम है, जो उत्तम संयमी हैं, जो घट के भीतर (=आध्यात्म) रत, समाधियुक्त, अकेला और सन्तुष्ट है, उसे भिक्खु कहते हैं।

शब्दार्थ : हत्थसंयतो = हाथो से संयत। **सञ्ञातुत्तमो** = भांति-भांति संयत। **अज्झत्तरतो** = अध्यात्म रत। **सन्तुसितो** = सन्तुष्ट।

वग्ग 25, गाथा 4

मधुर-भाषी

(कोकालिक की कथा, स्थान—जेतवन)

363. एक बार कोकालिक भिक्खु ने अग्गसावक थेर सारिपुत्त और महामोग्गल्लान को अपशब्द कहे, उन पर आक्रोश किया। उसकी दुर्गति हुई वह 'पदम निरय' में उत्पन्न हुआ। भगवान ने जेतवन विहार में उस समय कहा, "भिक्खुओ ! न केवल इसी समय बल्कि पहले भी कोकालिक भिक्खु अपने मुख के कारण अधोगति को प्राप्त हुआ था, नष्ट हुआ था, ऐसा कहते हुए भगवान ने कच्छप कथा व बहुभाणिक जातक को प्रकाशित किया और बोले, "भिक्खुओ ! भिक्खु को मुख में संयम रखना चाहिए। जो उतना ही बोलता है, जितना जानता है, जो इतना ही बोलता है, जितना जीया है। जो इतना ही बोलता है जिसका स्वयं गवाह है, उसकी वाणी स्वभावतः मधुर हो जाती है, उसकी वाणी से माधुर्य बरसने लगता है। उसके व्यक्तित्त्व से माधुर्य बरसने लगता

है। भिक्खुओ ! जो भिक्खु मुख (वाणी) से संयत हैं, मुख में संयम रखते हैं, मनन करके बोलते हैं, अनुद्धत हैं, उद्धत नहीं होते हैं। अर्थ और धर्म को प्रकट करते हैं, उसका भाषण मधुर होता है। भिक्खुओ ! भिक्खु को मुख (वाणी) से संयत रहकर समव्यवहार करते हुए अनुद्धतता (नम्रता) पूर्वक सबसे व्यवहार करना चाहिए।'' ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

363. यो मुखसञ्ञतो भिक्खु, मन्तभाणी अनुद्धतो।
अत्थं धम्मञ्च दीपेति, मधुरं तस्स भासितं।। 25.4।।

***अर्थ** : जो भिक्खु मुख में संयम रखता है, मनन करके बोलता है, उद्धत नहीं होता है, अर्थ और धर्म को प्रकट करता है, उसका भाषण मधुर होता है।*

शब्दार्थ : मन्तभाणी = मनन करके बोलने वाला। आचार्य बुद्धघोस ने ''प्रज्ञा के साथ बोलने वाला'' (मन्तभाणीति मन्तवुच्चति पञ्ञा, ताय मणनसीलो) अर्थ किया है। **अनुद्धतो** = शान्तचित्त, विनयपूर्वक।

वग्ग 25, गाथा 5

धर्म में रमण करने से परिहानि नहीं

(धम्माराम थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

364. भगवान के यह कहने पर कि ''चार माह के पश्चात् मेरा परिनिर्वाण होगा।'' पृथक्जन भिक्खु अपने को रोक न सके, आंसू बहाने लगे। अर्हत्तों को भी धर्म संवेग उत्पन्न हुआ। उनकी आंखें तो आंसुओं से नहीं भरीं, लेकिन हृदय उनका भी डांवाडोल था। उस समय धम्माराम नाम के एक भिक्खु ने ''मैं अभी रागरहित नहीं हुआ और शास्ता का परिनिर्वाण होने जा रहा है, इसलिए शास्ता के रहते ही मुझे अर्हत्त्व प्राप्त कर लेना चाहिए'' ऐसा सोच, एकान्त में जाकर समग्र संकल्प से साधना में लग गया।

धम्माराम उस दिन से एकान्त में रहते, मौन रखते और ध्यान करते। भिक्खुओं के पूछने पर भी उत्तर नहीं देते थे। भिक्खुओं से बातचीत नहीं करते थे। भिक्खुओं ने यह बात भगवान से कही। भगवान ने उन्हें बुलवाकर पूछा, ''भिक्खु ! तुझे क्या हुआ है ? क्या यह सत्य है कि तुम अन्य भिक्खुओं से बिलकुल बातें नहीं करते हो ?''

''भगवां! सत्य है।'' कहकर धम्माराम ने उत्तर निवेदित किया।

''भिक्खु ! तुम ऐसा क्यों कर रहे हो?'' भगवान के ऐसा पूछने पर धम्माराम ने अपने विचारों को कह सुनाया और बताया कि इसलिए वह एकान्त, मौन और साधना में रत है। इसलिए वह अन्य भिक्खुओं से अलग रह रहा है, उनको वह भूल गया, दूसरों से वाणी और वचन से सम्बंध न जोड़ते हुए वह मौन है और भीतर के विचार की तरंगों को विसर्जित कर ध्यान में रत है, समाधि में पहुंचना चाहता है, निर्वाण की चाह रखता है।

भगवान ने उसकी सारी बात सुनकर उसको साधुकार दिया और कहा, "भिक्खुओ ! अन्य भिक्खुओं को भी, जिन्हें मुझ पर प्रेम है, धम्माराम के समान ही होना चाहिए। माला-गन्ध आदि से पूजा करने वाले मेरी पूजा नहीं करते। प्रत्युत, जो धर्म के अनुसार आचरण करते हैं, वही मेरी पूजा करते हैं। धम्म में रमण करने वाला, धम्म में रत, धम्म का चिन्तन करने वाला, धम्म का अनुसरण करने वाला धम्माराम है, और ऐसा जो धम्माराम है, वही भिक्खु सद्धर्म को उपलब्ध होगा, वह चूकेगा नहीं, च्युत नहीं होगा। भिक्खुओ ! धर्म में रमण करने वाला, धर्म में रत, धर्म का चिन्तन करते और धर्म का अनुसरण करते भिक्खु सद्धर्म से च्युत नहीं होते हैं।" ऐसा कहते हुए जेतवन विहार में भगवान ने यह गाथा कही—

364. धम्मारामो धम्मरतो, धम्मं अनुविचिन्तयं।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु, सद्धम्मा न परिहायति।। 25.5।।

अर्थ : धर्म में रमण करने वाला, धर्म में रत होने वाला, धर्म का चिन्तन करने वाला, धर्म का अनुस्मरण करने वाला भिक्खु सद्धर्म से च्युत नहीं होता।

शब्दार्थ : **धम्मारामो** = धर्म में रमने वाला। **धम्मरतो** = धर्म में रत। **धम्मं अनुस्सरं** = धर्म का अनुस्मरण करते हुए। **सद्धम्मा** = सद्धर्म से। **न परिहायति** = हानि में नहीं होता अर्थात नहीं गिरता।

वग्ग 25, गाथा 6-7

अपने लाभ की अवहेलना न करे

(विपक्ष सेवक भिक्खु की कथा, स्थान—वेणुवन)

365-366. एक बार एक तरुण भिक्खु देवदत्त के पक्ष के भिक्खुओं के साथ जाकर देवदत्त के विहार में कुछ दिन रहा। उसने देवदत्त के उत्पन्न लाभ-संस्कार से खाया-पीया और आराम किया और पुनः वेणुवन विहार में आ गया। अन्य भिक्खुओं ने यह बात भगवान को बताई। भगवान ने उसको बुलाकर पूछा कि क्या भिक्खु ! तूने सचमुच ऐसा किया है ? भिक्खु ने बताया, "हां, भगवां ! अपने एक मित्र के कारण कुछ दिन वहां रहा, किन्तु मैं देवदत्त के पक्ष में नहीं हूं और न ही उसका मत मुझे रुचता है।"

भगवान ने कहा, "भिक्खु ! यद्यपि तू उसका मत नहीं मानता है, तथापि देखने वाले तुझे समझते हैं कि तू देवदत्त के पक्ष में है। तूने न केवल इस समय, बल्कि पहले भी ऐसा किया था।" कहकर महिलामुख जातक को लक्ष्य करके भगवान ने बतलाया, "भिक्खुओ ! भिक्खु को अपने लाभ से ही सन्तुष्ट होना चाहिए, दूसरे के लाभ की चाह नहीं करनी चाहिए, जो दूसरो के लाभ की चाह करता है, उसे ध्यान, विपश्यना एवं मार्गफल इन में से एक भी प्राप्त नहीं होता। भिक्खुओ! भिक्खु को अपने लाभ की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। दूसरों के लाभ की स्पृहा (ईर्ष्या) करता हुआ विचरण नहीं करना चाहिए। दूसरों के लाभ की स्पृहा करता हुआ भिक्खु समाधि को प्राप्त नहीं होता है। शुद्ध जीविका वाला और आलस्यरहित भिक्खु यदि थोड़ा लाभ भी हो तो भी अपने

लाभ की अवहेलना नहीं करता। स्व-लाभ से संतुष्ट भिक्खु उक्त ध्यानादि सभी धर्मों को प्राप्त कर लेता है। शुद्ध जीवन वाले, निरालम्ब (आलस्य रहित) उस भिक्खु की देवता प्रशंसा करते हैं।" ऐसा कह भगवान ने ये गाथाएं कहीं—

365. सलाभं नातिमञ्ञेय्य, नाञ्ञोसं पिहयं चरे।
अञ्ञेसं पिहयं भिक्खू, समाधिं नाधिगच्छति।। 25.6।।

***अर्थ** : अपने लाभ की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। दूसरो के लाभ की चाह (=स्पृहा) नहीं करनी चाहिये। दूसरों के लाभ की चाह करने वाला भिक्खु समाधि को प्राप्त नहीं करता।*

366. अप्पलाभो पि चे भिक्खु, सलाभं नातिमञ्ञति।
तं वे देवा पसंसन्ति, सुद्धाजीविं अतन्दितं।। 25.7।।

***अर्थ** : चाहे अल्प ही लाभ हो, जो शुद्ध जीविका वाला और आलस्य रहित भिक्खु अपने लाभ की अवहेलना नहीं करता है, उसकी देवता प्रशंसा करते हैं।*

शब्दार्थ : सलाभं =अपना लाभ। **न अञ्ञोसं** = दूसरों के साथ। **पिहयं** = स्पृहा करता हुआ।

वग्ग 25, गाथा 8

ममता-रहित भिक्खु है

(पंचग्र-दायक ब्राह्मण की कथा, स्थान—जेतवन)

367. भगवान सावत्थि में विहरते थे। सावत्थि में पंचग्र-दायक नामक एक ब्राह्मण था। वह खेत बोने के पश्चात् फसल तैयार होने तक पांच बार भिक्खुसंघ को दान देता था। 1. खेत में बीज डालते समय, खेत का अग्र भाग दान में देता था, 2. फल आने पर, फलों का अग्रभाग दान में देता था, 3. फलों के भण्डारण के समय, भण्डारण का अग्रभाग दान में देता था, 4. ऊरवल में कूटते समय, कुम्भाग्र नाम से दान देता था, 5. पुनः बोरियों में भरते समय पात्यग्र नाम से दान देता था। इस प्रकार प्राप्त होने वाली वस्तु को, उसमें से प्रथम भाग दान किए बिना उस वस्तु का उपभोग नहीं करता था। अतः लोग उसे पञ्चाग्रदायक ही करते थे। एक बार भगवान ने यह जानकर कि यह अनागामी मार्गफल को प्राप्त कर सकता है, वे भिक्खाटन करते हुए उसके द्वार पर जाकर खड़े हो गए। उस समय वह ब्राह्मण घर में बैठकर द्वार की ओर पीठ करके भोजन कर रहा था। ब्राह्मणी ने भगवान को देखा। वह चिंतित हुई कि यदि मेरे पति ने श्रमण गौतम को देखा, तो फिर यह निश्चय ही भोजन उन्हें दे देगा और तब मुझे फिर से भोजन बनाने की झंझट करनी पड़ेगी। ऐसा सोच वह भगवान की ओर पीठकर उन्हें अपने पति से छुपाती हुई खड़ी हो गयी, जिससे कि ब्राह्मण उन्हें देख न सके।

उस समय ब्राह्मण को भगवान की उपस्थिति की अन्तःप्रज्ञा होने लगी और वह अपूर्व सुगन्ध, जो भगवान को सदा घेरे रहती थी, नासपुटों तक पहुंच गयी। उसका मकान भी अलौकिक दीप्ति से भरने लगा और इधर ब्राह्मणी भी भगवान को दूसरी जगह न जाते देख हंस पड़ी। ब्राह्मण ने

चौंक कर देखा, उसे अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं हुआ और उसके मुंह से निकल पड़ा, "यह क्या?" उसने भगवान को वहां खड़ा देख, हाथ जोड़ कर वन्दना की और अवशेष भोजन देते हुए कहा, "पूज्य, भन्ते !.... मैंने अभी आधा ही भोजन किया है। अभी आधा भाग अवशिष्ट है। कृपया इसे स्वीकार करें !" भगवान ने उससे कहा, "ब्राह्मण। प्रत्येक भात मुझे उपयुक्त है, चाहे वह शेष है या अवशेष, मैं तो भोजन का प्रथम भाग भी लेता हूं, मध्यम भाग भी लेता हूं, तथा अन्तिम भाग भी लेता हूं। चाहे वह आखिरी जूठन ही क्यों न हो ब्राह्मण ! हम तो दूसरे के दिये भोजन दान से जीवित रहने वाले हैं। दूसरों के द्वारा दिये गए भोजन से पलने वाला जो भी आरम्भ, मध्य या अन्तिम भाग पावे उसकी वह न स्तुति करता है, न अब मानना ही ऐसे ही साधक के अकच्छप के बुद्धिमान लोग 'मुनि' कहते हैं।" ब्राह्मण भगवान की इस तरह की बातों को सुनकर बहुत अचम्भित हुआ और प्रसन्न भी हुआ कि भगवान ने उसके अवशेष भात को स्वीकार कर लिया।

उसने पूछा, "हे गौतम ! आप अपने शिष्यों को भिक्खु कहते हैं, क्यों भिक्खु कहते हैं ? भिक्खु का अर्थ क्या है ? कोई भिक्खु कैसा होता है ? भगवान जानते थे कि इसने मन और शरीर अर्थात नाम-रूप के बारे में पहले से ही जान रखा है। अतः वे बोले, "जिसकी नाम-रूप-पंचस्कन्ध में जरा भी ममता नहीं है और जो उनके नहीं होने पर शोक नहीं करता, वह भिक्खु है, उसे ही मैं भिक्खु कहता हूं। नाम कोई संज्ञा भर नहीं है, नाम का अपना अभिधेय है—मानसिक पक्ष, व्यक्ति का मानसिक पहलू। रूप है— पदार्थ। नाम-रूप का अर्थ हुआ—मानसिक और शारीरिक। मनुष्य इन दोनों ही पुंजों का योग है। नाम जहां सूक्ष्म पहलू है, वहीं रूप स्थूल पहलू है, दोनों से ही मिलकर हमारा यह शरीर बना है। चेतन शरीर बना है। इनकी निर्मिति पचस्कंधात्मक है। ऐसा व्यक्ति जो इनमें जरा भी मोह नहीं रखता है, ममता नहीं करता है और उनके न होने पर भी शोक नहीं करता है, वही भिक्खु है। उसके पास अपना कुछ भी नहीं होता है, वह इन स्कंधों से मुक्त हो जाता है, रीता हो जाता है, उसे ही मैं भिक्खु कहता हूं। हे ब्राह्मण ! जिसको नाम-रूप (पंचस्कन्ध) में बिलकुल ही ममता नहीं है और जो उनके (किसी वस्तु के) न होने पर शोक नहीं करता, वही भिक्खु कहा जाता है।" ऐसा कह कर शास्ता ने यह गाथा कही—

367. सब्बसो नामरूपस्मिं, यस्स नत्थि ममायितं।
असता च न सोचति, स वे भिक्खु'ति वुच्चति।। 25.8।।

अर्थ : जिसकी नामरूप (=पञ्चस्कन्ध) में बिलकुल ही ममता नहीं, और जो (उनके) नहीं होने पर शोक नहीं करता, वही भिक्खु कहा जाता है।

शब्दार्थ : ममायितं = ममता। **असता** = न होने पर।

वग्ग 25, गाथा 9-17

मैत्री-भावना से निर्वाण

(बहुत से भिक्खुओं की कथा, स्थान—जेतवन)

368-376. भगवान के अग्रणी शिष्यों में से एक महाकात्यायन के शिष्य कुटिकण्ण सोण थेर कुरारघर से जेतवन जा भगवान का दर्शन कर जब वापस आए, तब उनकी मां ने एक दिन उनके

उपदेश सुनने के लिए जिज्ञासा की और नगर में भेरी बजवाकर सबके साथ उनके उपदेश सुनने गयी। जिस समय वह उपदेश सुन रही थी, उसी समय चोरों के एक बड़े गिरोह ने उसके घर में सेंध लगाकर सोना-चांदी, हीरे-जवाहरात आदि ढ़ोना शुरू कर दिया। एक दासी ने चोरों का घर में प्रवेश किया जानकर उपासिका को जाकर कहा। थेर सोण की उपासिका मां ने कहा, "जा, चोरों की जो इच्छा हो, सो ले जावें, तू उपदेश सुनने में विघ्न मत डाल।"

चोरों का सरदार, जो कि दासी के पीछे-पीछे गया था, उसने तो खतरे की अपेक्षा की थी, परन्तु उपासिका को इसकी चिन्ता न करके धम्म-श्रवण में ही मग्न रही। ऐसा सोच कर वह अवाक रह गया। सकते में पड़ गया। उपासिका के इन थोड़े से शब्दों ने उसके मन-मस्तिष्क पर गहरी चोट कर दी। उन थोड़े से शब्दों से जैसे चिनगारी सी भड़क गयी, जैसे किसी ने उसको सोते से जगा दिया हो। वे थोड़े से शब्द उसके जीवन को बदल गए।

चोरों के सरदार को महसूस होने लगा कि सोना-चांदी, हीरे-जवाहरात से भी ज्यादा कुछ मूल्यवान होना चाहिए। जिसको यह उपासिका कहती है, 'जा, चोरों को जो लेना हो, ले जाने दे, उपदेश में विघ्न मत डाल।' जरूर यह कुछ पा रही है, जो हीरे-जवाहरात और सोना-चांदी से भी ज्यादा मूल्यवान है। उसकी आंखें खुल गयीं। वह लौटकर अपने साथियों के पास आया और उनको भी समझाया और बोला, "मित्रो ! हम भी चलें, वहां जो कुछ मिल रहा है, उस स्त्री को, जिसकी हमें खबर नहीं है, वह सम्पदा निश्चित ही इससे मूल्यवान ही होगी।" उन्हें भी बात जंच गयी। सबने चुराया हुआ सामान पुनः पूर्ववत रख दिया और सभी साथी भिक्खु कुटिकण्ण सोन के धम्मोपदेश सुनने पहुंच गए।

धर्म-प्रविचय समाप्त होने पर चोरों का सरदार उस उपासिका के पैरों पर गिरकर क्षमा मांगने लगा और उसने सारी बातें कह सुनायीं और बोला, " यदि आप क्षमा करती हैं, तो अपने पुत्र के पास मुझे प्रव्रजित कराइये।" ऐसे ही सब चोरों ने प्रार्थना की। उपासिका ने थेर सोण से प्रार्थना करके उनको प्रव्रज्या दिलायी। वे प्रव्रजित और उप-सम्पन्न होकर अलग-अलग कर्मस्थान से एक पर्वत पर जा वृक्षों के नीचे दूर-दूर बैठकर, श्रमण-धर्म करने लगे, ध्यान-विपश्यना में रत होने लगे। शास्ता जेतवन विहार में थे, उन भिक्खुओं के ध्यान में आए मानो वे उनके सामने ही बैठे हों। शास्ता ने वहां उनकी चर्य्या को देखकर उपदेश देते हुए कहा—

"भिक्खुओ ! मार की यह जो नाव है, इसको उलीचो। इसमें कुछ रह न जाय। इसमें न कामना हो, न वासना हो, न महत्त्वाकांक्षा हो, इसमें विचार न हो, इसमें भाव न हो, इसमें कुछ भी बचे नहीं। इसको उलीच कर भवातीत हो जाओ। इसको बिलकुल खाली कर लो, शून्य कर लो। यह तुम्हारे लिए हल्की हो जायेगी। राग और द्वेष को काट कर, छिन्न कर, फिर तुम निर्वाण को प्राप्त होओगे। हे भिक्खु ! इस नाव को उलीचो, उलीचने पर यह नाव तुम्हारे लिए हल्की हो जायेगी। राग और द्वेष को छिन्नकर, फिर तुम निर्वाण को प्राप्त होंगे।"

"भिक्खुओ ! पांच को काट दो—सत्काय दृष्टि कि मैं शरीर हूं विचिकित्सा या सन्देह, श्रद्धा

का अभाव, शीलव्रत परामर्श या दूसरों को शील और व्रत की सलाह देना और स्वयं उसका अनुगमन नहीं करना, अनुसरण नहीं करना, काम-राग अर्थात् सदा कामना से भरा रहना, यह पा लूं, वह पा लूं। ऐसा हो जाऊं, वैसा हो जाऊं और व्यापाद अर्थात् सदा व्यस्त कभी क्षण भर को विराम नहीं। ये पांच चीजें छेद देने जैसी हैं, ये पंच छेद्क हैं, इन्हें काटो। पांच हेय हैं, रूप-राग, अरूप-राग, मान, औद्धत्य और अविद्या। इन हेय पंचक को छोड़ दो और पांच की भावना करो, ये भाव्य पंचक हैं—श्रद्धा एक सरल भरोसा-अस्तित्त्व पर, स्वयं पर, जीवन पर, वीर्य-ऊर्जा, जीवन्त होकर जीयो, मशाल की तरह जीओ, स्मृति-होशपूर्वक, जागरण से जीओ, समाधि-समाधान चित्त की दशा को प्राप्त करो जहां न मन है, न मनन और प्रज्ञा अपने अन्तः की स्फूर्ति और अन्तर्दृष्टि का दीपक जलाओ, इन पांचों की भावना करो और इनकी अवहेलना करो, उल्लघंन करो, ये उल्लंघ्य पंचक हैं—राग, द्वेष, मोह, मान और मिथ्यादृष्टि। जो पांच को काट दे, भिक्खुओ ! पांच को छोड़ दे, भिक्खुओ ! पांच की भावना करे भिक्खुओ ! और पांच के संग का अतिक्रमण कर जाए, भिक्खुओ ! उसी को ओघो (बाढ़ों अर्थात काम, भव, दृष्टि और अविद्या के ओघ) से पार गया भिक्खु कहते है। वही उस पार चला गया होता है।''

''भिक्खु ! ध्यान में लगो, प्रमाद मत करो। तुम्हारा चित्त काम गुण में रमण न करे, भोगों के चक्कर में नहीं पड़े। प्रमत होकर लोहे के गोले को मत निगलो। बाद में तुम्हे संसार की अग्नि में जलते हुए 'यह दुख है' इस प्रकार का क्रन्दन नहीं करना पड़े।''

''प्रज्ञाविहीन को ध्यान नहीं होता है, ध्यान न करने वाले को प्रज्ञा नहीं हो सकती। जिसमें ध्यान और प्रज्ञा दोनों हैं, वही निर्वाण के समीप है।''

''शून्य गृह में प्रतिष्टत (एकान्त), शान्तचित्त एवं भले प्रकार से धर्म की भावना करते हुए विपश्यना करते हुए, भिक्खु की रति (आनन्द) मनुष्येत्तर (लोकोत्तर) होती है।''

''जैसे-जैसे भिक्खु रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इन पांच स्कन्धों की उत्पत्ति और विनाश पर विचार करता है, वैसे-वैसे ही वह ज्ञानियों की प्रीति और प्रमोद रूपी अमृत को प्राप्त करता है।''

''यहां इस धर्म में प्राज्ञ भिक्खु का आरम्भ होता है— इन्द्रियों की रक्षा (संयम), सन्तुष्टि और प्रातिमोक्ष (नियमों) की रक्षा (संवर) में संवर की धारणा में, ऐसे ऐसे शुद्ध जीवन वाले, आलस्य विहीन और कल्याण करने वाले मित्रों की संगति करें।''

''जो सेवा सत्कार स्वभाव वाला तथा आचार पालन में निपुण है, वह सानन्द दुख का अन्त करेगा।'' ऐसा कहते हुए ऐसा करते हुए भगवान ने उस समय यह गाथाएं कहीं—

368. मेत्ताविहारी यो भिक्खु, पसन्नो बुद्धसासने।
अधिगच्छे पदं सन्तं, संखारूपसमं सुखं।। 25.9।।

***अर्थ** : जो मैत्री (भावना) के साथ विहार करने वाला बुद्ध शासन में प्रसन्न भिक्खु है, वह संस्कारों को शमन करने वाले और सुखमय पद (निर्वाण) को प्राप्त करता है।*

369. सिञ्च भिक्खु ! इमं नावं, सित्ता ते लहुमेस्सति।
छेत्वा रागञ्च दोसञ्च, ततो निब्बानमेहिसि।। 25.10।।

अर्थ : *भिक्खुओ ! इस नाव को उलीचो, उलीचने पर यह तुम्हारे लिए हल्की हो जायेगी। राग और द्वेष को छिन्नकर, फिर तुम निर्वाण को प्राप्त होओगे।*

370. पञ्च छिन्दे पञ्च जहे, पञ्चचुत्तरि भावये।
पञ्च संगातिगो भिक्खु, ओघतिण्णोति'ति वुच्चति।। 25.11।।

अर्थ : *(सत्यकायदृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रत-परामर्श, कामराग और व्यापाद)—इन पांच (अवरभागीय संयोजनों) को काटे, (रूपराग, अरूपराग, मान, औद्धत्य और अविद्या) इन पांच (ऊर्ध्वभागीय संयोजनों) को छोड़ दें। आगे (उनके प्रहाण के लिए श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा)—इन पांच (इन्द्रियों) की भावना करें, (राग, द्वेष, मोह, मान और मिथ्यादृष्टि—इन) पांच के संसर्ग का अतिक्रमण कर चुका भिक्खु (काम, भव, दृष्टि और अविद्या के) ओघ (=बाढ़) से पार हुआ कहा जाता है।*

371. झाय भिक्खु! मा च पमादो, मा ते कामगुणे रमस्सु चित्तं।
मा लोहगुलं गिली पमत्तो, मा कन्दि दुक्खमिदति डय्हमानो।। 25.12।।

अर्थ : *भिक्खु ! ध्यान में लगो, प्रमाद मत करो, तुम्हारा चित्त भोगों के चक्कर में मत पड़े। प्रमत्त होकर लोहे के गोले को मत निगलो। (हाय !) यह दुख' कहकर दग्ध होते (पीछे) तुम्हें क्रंदन न करना पड़े।*

372. नत्थि झानं अपञ्ञस्स, पञ्ञा नत्थि अझायतो।
यम्हि झानञ्च पञ्ञा च, स वे निब्बानसन्तिके।। 25.13।।

अर्थ : *प्रज्ञाविहीन (पुरुष) को ध्यान नहीं होता है, ध्यान न करने वाले को प्रज्ञा नहीं हो सकती। जिसमें ध्यान और प्रज्ञा (दोनों) हैं, वही निर्वाण के समीप है।*

373. सुञ्ञागारं पविट्ठस्स, सन्तचित्तस्स भिक्खुनो।
अमानुसो रती होति, सम्माधम्मं विपस्सतो।। 25.14।।

अर्थ : *शून्य गृह में प्रविष्ट, शान्तचित्त भिक्खु को भली प्रकार से धर्म की विपश्यना करते हुए अमानुषी-रति (=आनन्द) होती है।*

374. यतो यतो सम्मसति, खन्धानं उदयब्बयं।
लभति पीतिपामोज्जं, अमतं तं विजानतं।। 25.15।।

अर्थ : *जैसे-जैसे भिक्खु (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) इन पांच स्कन्धों की उत्पत्ति और विनाश पर विचार करता है, (वैसे ही वैसे) वह ज्ञानियों की प्रीति और प्रमोद (रूपी) अमृत को प्राप्त करता है।*

375. तत्रायमादि भवति, इध पञ्ञस्स भिक्खुनो।
इन्द्रियगुत्ति सन्तुट्ठि, पातिमोक्खे च संवरो।
मित्ते भजस्सु कल्याणे, सुद्धाजीवे अतन्दिते।। 25.16।।

अर्थ : इस धर्म में प्रज्ञावान् भिक्खु को आदि में यह करना है—इन्द्रियसंयम, संतोष और प्रातिमोक्ष की रक्षा। (उसे चाहिए कि) वह शुद्ध जीविका वाले, निरालस तथा भले मित्रों का साथ करे।

376. पटिसन्थारवुत्तस्स, आचारकुसलो सिया।
ततो पामोज्जबहुलो दुक्खस्सन्तं करिस्सती।। 25.17।।

अर्थ : जो सेवा-सत्कार के स्वभाव वाला तथा आचार पालन में निपुण है, वह सानन्द दुख का अन्त करेगा।

शब्दार्थ : मेत्ताविहारी = मित्रतापूर्वक विहार करने वाला। **सन्तं** = शान्त। **संखारूपसमं** = संस्कारों को शमन करने वाले। **सिंच** = सिचो अर्थात् खाली कर दो। **सित्ता** = खाली हो जाने पर। **लहुमेस्सति** = हल्की हो जायेगी। **पंच छिन्दे** = (प्रथम) पांच संयोजनों-सक्कायदिट्ठि, विचिकिच्छा, सीलब्यतपरामासो, कामरागो, पटिघो) को काट दे। **पंच जहे** = (दूसरे) पांच संयोजनो-(रूपराग, अरूपराग, मात, उद्धच्च अविज्जा) को छोड़ दें। **पंच चुत्तरि भावये** = बाद में पांच इन्द्रियों-(सद्धा, सती, विरिय, समाधि, पञ्ञा) की भावना करे। **पंचसंगतिगो** = पांच नीवरणों (रूप, वेदना, संज्ञा, संखार, विञ्ञाण) के सम्पर्क से पृथक रहने वाला। **ओघतिण्णो** = ओघ (काम, भव, दिट्ठ और अविज्जा रूपी नदियों की बाढ़) को पार करने वाला। **रमेस्सु** = रमण करे। **लोहगुलं** = लोहे के गोले को। **गिलो** = निगलो। **कन्दि** = क्रन्दन करो। **सम्मसति** = विचार करता है। **पीतिपामोज्जं** = प्रीति और प्रमोद। **विजानतं** = ज्ञानियों के। **पटिसंथारवत्तस्स** = (पटिर्सथारवुति + अस्स) सेवा-सत्कार की वृत्तिवाला हो।

वग्ग 25, गाथा 18

राग और द्वेष को छोड़ो

(पांच सौ भिक्खुओं की कथा, स्थान—जेतवन)

377. एक बार पांच सौ भिक्खु सावत्थि में भगवान से ध्यान विपश्यना का कर्मस्थान ग्रहण कर वन में साधना हेतु चले गए। वहां पर उन्होंने देखा कि जूही के जो फूल सुबह खिले हुए थे, शाम के समय जूही से जुदा हो चुके हैं। भिक्खुओं ने आपस में मनन किया कि वे भी क्लेशों की मुक्ति के लिए कठोर साधना करेंगे, जूही के फूलों के कुम्हला कर गिरने से पूर्व ही हम लोग राग आदि से मुक्त होंगे।

शास्ता जेतवन विहार में विहरते थे। उन्होंने अपने प्रज्ञा चक्षु से इन पंचशत भिक्खुओं की मनोदशा देखी और उनके ध्यान में उन्हें कहा, "भिक्खुओ ! भिक्खु को कुम्हला कर गिरने वाले फूल के समान दुख से छुटकारा पाने के लिए उद्योग करना ही चाहिए। जैसे जूही कुम्हलाये फूलों को छोड़ देती है, वैसे ही भिक्खुओ ! राग और द्वेष छोड़ दो।" कह गन्धकुटी में बैठे हुए ही आलोक व्याप्त भगवान इस गाथा को कहा—

377. वस्सिका विय पुप्फानि मद्दवानि पमुच्चति।
एवं रागञ्च दोसञ्च विप्पमुच्चेथ भिक्खवो।। 25.18।।

अर्थ : जैसे जूही कुम्हलाये फूलों को छोड़ देती है, वैसे ही भिक्खुओ ! तुम राग और द्वेष को छोड़ दो।

शब्दार्थ : वस्सिका = जूही (सं. वर्षिका)। **म वानि** = कुम्हलाये हुये।

वग्ग 25, गाथा 19

भिक्खु उपशान्त कहा जाता है

(शान्तकाय थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

378. **शान्तकाय** नामक एक भिक्खु थे। वे शरीर से हरेक प्रकार से शान्त रहते थे। वे अपने शरीर में चंचलता व्याप्त नहीं होने देते थे। दूसरे भिक्खुओं ने जेतवन विहार में भगवान से कहा, ''भन्ते ! शान्तकाय स्थविर के समान हमने भिक्खु को नहीं देखा है, इनके बैठने के स्थान पर हाथ-पैर भी नहीं चलता है, शरीर का हिलना भी नहीं होता है।'' उसे सुनकर शास्ता ने कहा, ''भिक्खुओ ! भिक्खु को शान्तकाय स्थविर के समान ही उपशान्त होना चाहिए।''

''शान्त शरीर वाला, शान्त वाणी वाला शान्तिवान, भली-भांति एकाग्र सुसमाहित और संसार की योग्य वस्तुओं को त्याग देने वाला भिक्खु 'उपशान्त' कहा जाता है।'' उस समय भगवान ने यह गाथा कही—

378. सन्तकायो सन्तवाचो सन्तवा सुसमाहितो।
वन्तलोकामिसो भिक्खु उपसन्तोति वुच्चति।। 25.19।।

***अर्थ** : शरीर और वचन से शान्त, भली प्रकार समाधियुक्त, शान्ति सहित तथा लोक के आमिष का वमन कर दिये हुए भिक्खु को उपशान्त कहा जाता है।*

शब्दार्थ : सन्तवा = शान्तिवान्। **वन्तलोकामिसो** = लोक (संसार) की भोग्य वस्तुओं को त्याग देने वाला।

वग्ग 25, गाथा 20-21

मनुष्य अपना स्वामी आप है

(नंगलकुल थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

379-380. सावत्थि में एक निर्धन पुरुष हल चलाकर जीवन-यापन करता था। एक दिन उसे एक भिक्खु ने ले जाकर प्रव्रजित किया। प्रव्रजित होने से पूर्व उसने अपने नंगल (हल) को विहार के पास ही एक वृक्ष पर टांग दिया। वह प्रव्रजित जीवन में कुछ दिन प्रसन्न रहा, परन्तु फिर उस पर उदासी छाने लगी और पुराने दिन याद आने लगे। वह उस हल को लेकर गृहस्थ हो जाने के लिए वृक्ष के नीचे गया, किन्तु वहां पहुंचते हुए ही उसे विरक्ति हो आयी और अपने आप को

अनेक प्रकार से समझाकर लौट आया। ऐसा एक बार नहीं हुआ, कई बार हुआ। उसे जब-जब भी उदासी उत्पन्न होती थी, वह तब-तब वहां जाता था और विरक्त होकर लौट आता। यह उसकी साधना बन चुकी थी।

भिक्खुओं ने उसे बार-बार नंगल (हल) के पास जाते देख उसका नाम ही **नंगलकुल** रख दिया। अपने द्वंद्व की इस मनोदशा में एक दिन वह हल के दर्शन कर के लौट रहा था कि अर्हत्त्व को पा गया और फिर वह कभी उस हल के दर्शन करने नहीं गया। किसी ने भी उसे हल के दर्शन करते हुए नहीं देखा। भिक्खुओं में जिज्ञासा उत्पन्न हुई। सोचा इस नंगल कुल को क्या हो गया है? अब उस वृक्ष के पास नहीं जाता है, पहले तो बार-बार जाता था। उन्होंने पूछा, "आवुस! नंगल कुल अब तू वहां क्यों नहीं जाता है ?"

नंगल कुल ने उत्तर दिया, "आवुसो ! जब तक अतीत से आसक्ति रही, जाता रहा। जब तक संसर्ग रहा, तब तक गया। अब संसर्ग न होने से नहीं जाता हूं। अब वह जंजीर टूट गयी है। मैं अब मुक्त हूं।" इसे सुन भिक्खुओं ने भगवान से कहा, "भन्ते ! यह नंगलकुल झूठ बोलता है, अर्हत्त्व प्राप्ति की घोषणा करता है।"

भगवान ने कहा, "भिक्खुओ ! मेरे पुत्र ने अपने आपको उपदेश दे प्रव्रजित होने के कृत्य को समाप्त कर लिया है। उसे जो पाना था, उसने पा लिया है और जो छोड़ना था, छोड़ दिया है। वह निश्चय ही मुक्त हो गया है। उसके अतीत का सब जाल छूट गया है, सब झंझट छूट गए हैं। इसने यद्यपि किसी और से उपदेश ग्रहण नहीं किया, लेकिन अपने आपको रोज-रोज उपदेश देता रहा। जब-जब गया; उस वृक्ष के पास, अपने को उपदेश दिया। उसने अपने को ही जगाया है, अपने को ही प्रेरित किया है। इसकी किसी को कानो-कान खबर नहीं होती है। किसी दूसरे की कोई वस्तुतः जरूरत भी नहीं है। तुम भी अपने को जगाने में लग जाओ, निश्चिय ही जाग जाओगे, अपना स्वामी बनो, अपना मालिक बनो।" ऐसा कहते हुए भगवान ने आगे कहा, "अपने द्वारा अपने को प्रेरित करें। अपने द्वारा अपने को ही संलग्न करें। वह अपने द्वारा सुरक्षित (अन्तगुत्तो) स्मृतिवान भिक्खु सुखपूर्वक विहार करेगा। भिक्खुओ ! मनुष्य अपना स्वामी आप है। मनुष्य स्वयं ही अपनी गति है, शरण है। इसलिए अपने को संयमी बनावें, संयत रखें जैसे कि व्यापारी अपने उत्तम घोड़े को संयत रखता है।" भगवान ने जेतवन विहार में नंगलकुल थेर के सन्दर्भ में ये गाथाएं कहीं—

379. अत्तना चोदयत्तानं, पटिवासे अत्तमत्तना।
सो अत्तगुत्तो सतिमा, सुखं भिक्खु विहाहिसि।। 25.20।।

***अर्थ** : मनुष्य अपने ही आप को प्रेरित करेगा, अपने ही आपको संलग्न करेगा, वह स्व-गुप्त (स्वयं) (=अपने द्वारा रक्षित) स्मृतिमान् भिक्खु सुख से विहार करेगा।*

380. अत्ताहि अत्तनो नाथो, अत्ता हि अत्तनो गति।
तस्मा सञ्ञमयत्तानं, अस्सं भद्रं'व वाणिजो।। 25.21।।

***अर्थ** : मनुष्य अपना स्वामी अपने आप है, स्वयं ही अपनी गति है, इसलिए अपने को संयमी बनावे, जैसे कि सुन्दर घोड़े को बनिया (संयत करता है)।*

शब्दार्थ : चोदयत्तानं = अपने को प्रेरित करे। **पटिवासे** = संलग्न करे। **विहाहिसि** = विहरोगे।

वग्ग 25, गाथा 22

शान्तपद को प्राप्त करता है

(वक्कलि स्थविर की कथा, स्थान—जेतवन)

381. सावत्थि में वक्कलि नाम का एक ब्राह्मण पुत्र था। उसने एक दिन भगवान को भिक्खाटन के लिए शहर में चारिका करते हुए देखा। वह भगवान के दिव्य-स्वरूप को देखकर अभिभूत हो गया, वह उनके प्रति अगाध स्नेह और श्रद्धा से भर गया। उसके मन में सदा भगवान के सान्निध्य में रहने का विचार आया और वह प्रव्रजित हो गया। प्रव्रज्या लेते समय भी उसके मन में यही विचार था कि मैं इनके पास भिक्खु हो जाऊंगा, तो सदा इन्हें देख पाऊंगा।

प्रव्रज्या से ही वह ध्यान-भावना आदि न कर केवल तथागत के रूप-सौन्दर्य को ही देखा करता था। भगवान भी उसके ज्ञान की परिपक्वता को देखते हुए कुछ नहीं कहते थे। जब भगवान ने देखा कि वक्कलि थेर का ज्ञान परिपक्व हो गया है। तब उन्होंने कहा, "वक्कलि ! मेरे पास बने रहने में कोई फायदा नहीं है, तुम ध्यान-साधना करो, केवल जो धम्म को देखता है, वही मुझे देखता है। "वक्कलि ! इस अपवित्र शरीर को देखने से क्या लाभ ? वक्कलि ! जो धर्म को देखता है, वह मुझे देखता है।" ऐसा कहकर उपदेश दिया।

शास्ता के इस प्रकार से उपदेश दिये जाने पर भी वक्कलि थेर शास्ता को छोड़ कर नहीं जाते थे। तब शास्ता ने विचार किया कि यह भिक्खु बिना संवेग को प्राप्त हुए नहीं समझेगा। ऐसा सोच वर्षोपनायिका के दिन" हट जा वक्कलि ! हट जा वक्कलि !" कहकर हटा दिया। वे "शास्ता अब मुझसे नहीं बोलेगे। मुझे अब जीवित रहने में क्या सार। सोच गृद्धकूट पर्वत पर से कूद कर प्राण देने का विचार कर गृध्रकूट पर चढ़े। शास्ता ने उसकी यह दशा देखकर उसे अपने आलोक से उद्दीप्त किया, उसको जानकर थेर को बलवती प्रीति उत्पन्न हुई, तब भगवान ने उससे कहा, "बुद्ध शासन में प्रसन्न रहने वाला और बहुत प्रमोद को पाने वाला भिक्खु संस्कारों का उपशमन करने वाले सुखकर, शान्त पद को प्राप्त होता है।" ऐसा कहकर भगवान ने जेतवन में इस गाथा को प्रकाशित किया—

381. पामोज्जबहुलो भिक्खु, पसन्नो बुद्धसासने।
अधिगच्छे पदं सन्तं, संखारूपसमं सुखं ।। 25.22।।

***अर्थ** : बुद्ध शासन में प्रसन्न बहुत प्रमोदयुक्त भिक्खु संस्कारों को उपशमन करने वाले सुखमय शान्तपद को प्राप्त करता है।*

शब्दार्थ : **पामोज्जबहुलो** = अत्यधिक प्रमोद युक्त। **बुद्धसासने** = बुद्ध शासन में। **पसन्नो** = प्रसन्न। **संखारूपसमं** = समस्त संस्कारों को शान्त करने वाले। **सुखं** = सुखमय। **सन्तं पदं** = शान्ति पद यानी निर्वाण को। **अधिगच्छे** = प्राप्त कर लेता है।

वग्ग 25, गाथा 23

चन्द्रमा की भांति प्रकाश करता है

(सुमन सामनेर की कथा, स्थान—पुब्बाराम, सावत्थि)

382. एक बार हिमालय के वन में अपने गुरु अनुरुद्ध के बीमार होने पर सामनेर सुमन अनवतप्त झील से पानी लाये थे, जो वहां से बहुत दूर थी। यह उनके रिद्धिबल का ही प्रताप था। सात वर्ष की अवस्था का अर्हत्त्व प्राप्त 'सुमन' सामनेर जब अनुरुद्ध थेर के साथ सावत्थि के पूर्वाराम विहार में आया, तब पृथकजन भिक्खु उसके कान, हाथ आदि पकड़कर पूछते थे, "सामनेर उदास तो नहीं हो?"

भगवान ने यह देख सुमन सामनेर की शक्ति प्रकट करने के लिए आनन्द थेर को बुलाकर कहा, "आनन्द ! मैं अनवतप्त के जल से पैर धोना चाहता हूं, किसी सामनेर को भेजकर एक घड़ा पानी मंगाओ।" आनन्द थेर ने जाकर सभी सामनेरों को कहा, किन्तु कोई तैयार नहीं हुआ। अर्हत् सामनेर जानते ही थे कि भगवान सुमन सामनेर को ही भेजना चाहते हैं, इसलिए उन्होंने जाना नहीं चाहा और पृथकजन असमर्थ होने से नहीं जाना चाहते थे।

सबसे अन्त में आनन्द थेर ने सामनेर सुमन से कहा। वह बहुत बड़ा घड़ा लेकर आकाश-मार्ग से जाकर पानी ले आये। जिस समय वे पानी लेकर 'आकाशमार्ग ' से आ रहे थे, उस समय भगवान ने उसे दिखला कर बड़ी प्रशंसा की और कहा, " भिक्खुओ ! जो स्मृतिवान हो, प्रज्ञाशील रह धम्म का अभ्यास करता है, वह ऐसे रिद्धि सिद्धबल को प्राप्त करता है—चाहे वह छोटा सामनेर ही क्यों न हो?" सामनेर सुमन के आने पर उससे पूछा—"सामनेर ! तू कितने वर्ष का है।"

"भन्ते ! मैं सात वर्ष का हूं।"

"अच्छा, आज से तू भिक्खु होगा।" भगवान ने इस प्रकार कहकर सुमन को दायज-उपसम्पदा दी। दायज उपसम्पदा सुमन और सोपाक, इन दो ही को मिली थी।

उसके उपसम्पन्न हो जाने पर भिक्खुओं में यह चर्चा चली, "आवुसो ! आश्चर्य है, इस प्रकार के छोटे सामनेर का भी ऐसा अनुभाव होता है। इससे पूर्व हमने दूसरे के ऐसे अनुभाव को नहीं देखा था।" शास्ता ने भिक्खुओं की बात को सुनकर कहा, " भिक्खुओ ! मेरे शासन में छोटा भी भली-प्रकार प्रतिपन्न हो, ऐसी सम्पत्ति को पाता है। जो दहर (युवा) भिक्खु भी बुद्ध शासन में अपने को लगा देता है। वह इस संसार को बादलों से मुक्त हुए चन्द्रमा के समान प्रकाशित करता है।" ऐसा कह भगवान ने यह गाथा कही—

382. यो हवे दहरो भिक्खु, युञ्जति बुद्धसासने।
सो इमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा ।। 25.23।।

***अर्थ** : जो दहर (=अल्पवयस्क) भिक्खु बुद्ध-शासन में संलग्न होता है, वह मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भांति इस लोक को प्रकाशित करता है।*

शब्दार्थ : दहरो = युवा 'दहरो च युवा सुसु' इत्यभिधानप्पदीपिका।

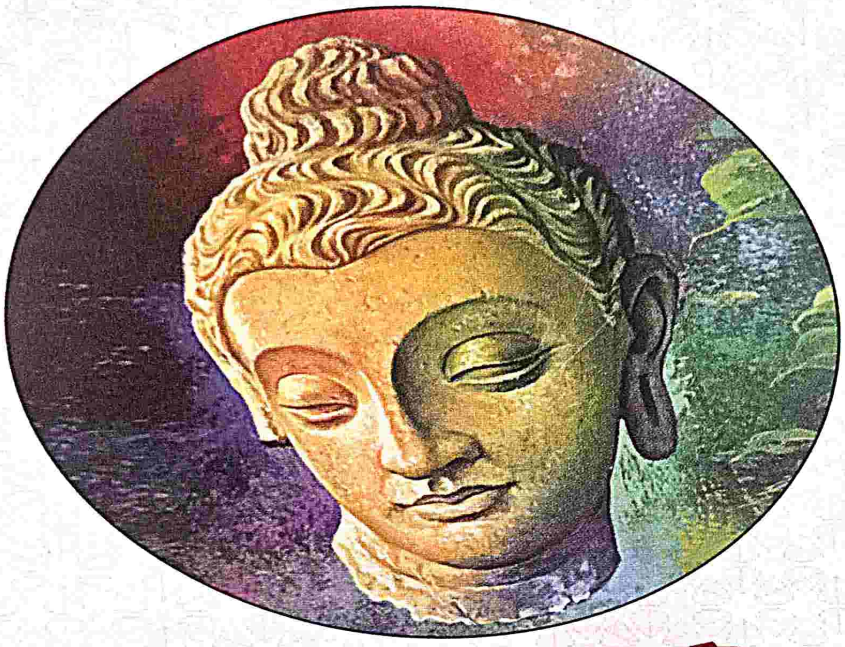

ब्राह्मण वग्गो

THE PERFECT ONE

छिन्द सोतं परक्क[illegible] [illegible]नुद ब्राह्मण ।
संखारानं खयं ञत्वा, [illegible]ञ्ञूसि ब्राह्मण।।

अर्थ : ब्राह्मण ! (तृष्णा के) स्रोत को काट दे, पराक्रम कर (और) कामनाओं को दूर कर दे। ब्राह्मण ! संस्कार के क्षय को जानकर अकृत (=निर्वाण) का साक्षात्कार कर लोगे।

किया है। इस प्रकार तथागत का दर्शन 'ब्राह्मण वर्ण' को मान्यता देता है, ऐसा करके ये लोग बुद्ध धर्म को ब्राह्मणी धर्म का चोगा पहनाने की असफल चेष्टा करते हैं, क्योंकि बुद्ध का ब्राह्मण शब्द नई व्याख्या और अनत ऊंचाइयों का प्रतीक है, वह न तो जाति से, न कर्म से और न ही अन्य कर्मकाण्डों से निष्पन्न है। भाषा के शब्दों की स्वीकृति उसको वो ही अर्थ नहीं देती है, जो किसी में रूढ हो चुकी होती है। तथागत का ब्राह्मण श्रामण्यफल का प्राप्तिकर्ता है, श्रमण है, अर्हत है, बोधिसत्व है, बुद्ध है।

26. ब्राह्मण वग्गो

2. गाथाएं

वग्ग 26, गाथा 1

कामनाओं को दूर करो

(बहुत श्रद्धालु ब्राह्मण की कथा, स्थान—जेतवन)

383. सावत्थि में एक ब्राह्मण भगवान बुद्ध की शिक्षाओं को सुनकर अत्यन्त ही श्रद्धावान हो प्रतिदिन सोलह भिक्खुओं को नित्य दान देने लगा। जब भिक्खु उसके घर जाते थे, तो वह अत्यन्त श्रद्धा से, "आइये, अर्हत् लोग ! बैठिये अर्हत् लोग ! भोजन कीजिये अर्हत् लोग।" आदि कहता था। उसके द्वारा अर्हत् सम्बोधित करते हुए जानकर अर्हत् भिक्खुओं के मन में विचार आता कि यह हम लोगों के अर्हत् होने को जानता है, वही पृथक्जन (साधारण) भिक्खुओं को लज्जा आती थी कि यह हममें अर्हत्त्व की संभावना देखता है। इस प्रकार एक दिन संकोच में पड़कर उसके घर कोई भी भोजन करने नहीं आया।

जब ब्राह्मण ने देखा कि उसके घर पर कोई भी भिक्खु नहीं आ रहा है, तो वह बहुत ही दुखी हुआ और भगवान के पास जेतवन विहार गया और कहने लगा, "भन्ते ! एक भी आर्य मेरे घर भोजन करने नहीं आया।" भगवान ने उन भिक्खुओं को बुलाकर उनके नहीं जाने का कारण पूछा। भिक्खुओं ने ब्राह्मण के द्वारा उन्हें अर्हत् कहने के बारे में बताते हुए पूरी बात बतायी। भगवान ने तब उन भिक्खुओं से कहा कि क्या ब्राह्मण द्वारा ऐसा कहे जाने पर वे अवांछित या झूठी गर्वानुभूति महसूस करते हैं। भिक्खुओं ने बताया कि भन्ते ! ऐसी कोई बात नहीं है। तब भगवान ने कहा, "भिक्खुओ ! अगर ब्राह्मण द्वारा तुम्हें अर्ह सम्बोधित करने पर तुम में किसी भी प्रकार की झूठी गर्वानुभूति नहीं है और उसका प्रदर्शन नहीं है, तो तुम किसी भी प्रकार से भिक्खु जीवन के नियम को नहीं तोड़ रहे हो, विनय का उल्लंघन नहीं कर रहे हो। सच्चाई तो यह है कि भिक्खु अर्हतों के प्रति अत्यधिक श्रद्धावान है, इसलिए वह तुम्हें ऐसा सम्बोधित करता है। "भिक्खुओ ! यह ब्राह्मण श्रद्धा से अर्हत् कहता है और श्रद्धा से कहने में आपत्ति नहीं होती है, चूंकि ब्राह्मणों को अर्हत्तों में अधिक प्रेम है, इसलिए तुम्हें भी तृष्णा के स्रोत को काटकर अर्हत्त्व पाना ही युक्त है।" भगवान बुद्ध ने फिर कहा, "भिक्खुओ ! पराक्रम से तृष्णा के स्रोत को काट दें और कामनाओं को दूर कर दो। हे भिक्खुओ ! संस्कारों के क्षय को जानकर तुम अकृत-निर्वाण का साक्षात्कार कर लोगे।" भगवान ने कहा कि निर्वाण अकृत है, यह किए से नहीं होता, जो करने से कभी नहीं हुआ, यह सब कुछ छोड़ देने से प्राप्त होता है, इसकी प्राप्ति है। ऐसा कहते हुए यह गाथा कही—

383. छिन्द सोतं परक्कम्म, कामे पनुद ब्राह्मण ।
संखारानं खयं ञत्त्वा, अकतञ्ञूसि ब्राह्मण।। 26.1।।

अर्थ : ब्राह्मण ! (तृष्णा के) स्रोत को काट दे, पराक्रम कर (और) कामनाओं को दूर कर दे। ब्राह्मण ! संस्कार के क्षय को जानकर अकृत (=निर्वाण) का साक्षात्कार कर लोगे। (गाथा में ब्राह्मण शब्द भिक्खु के लिए प्रयुक्त हुआ है।)

शब्दार्थ : पनुद = भगा दो। **अकतञ्ञू सि** = अकृत (निर्वाण) को जानने वाले हो।

वग्ग 26, गाथा 2

सभी बन्धन अस्त हो जाते हैं

(बहुत से भिक्खुओं की कथा, स्थान—जेतवन)

384. भगवान के जेतवन में विहरते समय एक बार तीस दिशावासी भिक्खु भगवान की वन्दना हेतु उपस्थित हुए। सारिपुत्त थेर ने उनके अर्हत्त्व प्राप्ति के निश्चय को देखकर उस समय शास्ता के पास खड़े हुए ही उन भिक्खुओं के भले के लिए पूछा, "भन्ते ! दो धर्म कौन से हैं ?" भगवान ने कहा, "सारिपुत्त ! शमथ और विपश्यना दो धर्म कहे जाते हैं।" समथ संकल्प से पायी गयी समाधि ही है, यह योग से, विधि से, विधान से, चेष्टा से यत्न से पायी जा सकती है, यह लौकिक समाधि ही है। समथ में बाहर से तो सब हो जाता है, भीतर कुछ चूक रह जाती है। विपश्यना पूरी समाधि है। विपश्यना में बाहर-भीतर एक जैसा होता है, एक रस हो जाता है। समथ लौकिक समाधि है, तो विपश्यना अलौकिक समाधि। जो इन दो धर्मों को जान लेता है, वह पार हो जाता है। जब ब्राह्मण (भिक्खु) दो धर्मों (शमथ और विपश्यना) में पारंगत हो जाता है, तब उस जानकार के सभी संयोग (बन्धन) अस्त हो जाते हैं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

384. यदा द्वयेसु धम्मेसु, पारगू होति ब्राह्मणो।
अथस्स सब्बे संयोगा, अत्थं गच्छन्ति जानतो।। 26.2।।

अर्थ : जब ब्राह्मण (भिक्खु) दो धर्मों (=शमथ और विपश्यना) में पारंगत हो जाता है, तब उस जानकर के सभी बन्धन (=संयोग) कट जाते हैं।

शब्दार्थ : **यदा** = जब। **द्वयेसु धम्मेसु** = दो धर्मों अर्थात शमथ और विपश्यना में। **पारगू** = पारंगत अर्थात कुशल। **होति** = हो जाता है। **अथ** = तब। **जानतो** = जानकार। **अस्स** = उसके। **सब्बे** = सब। **संयोगा** = संयोग यानी बंधन। **अत्थं गच्छन्ति** = अस्त हो जाते है अर्थात नष्ट हो जाते हैं।

वग्ग 26, गाथा 3

निर्भय और अनासक्त ब्राह्मण है

(मार की कथा, स्थान—जेतवन)

385. एक बार मार ने मनुष्य वेश बनाकर भगवान के पास आकर पूछा, "भन्ते ! आपका प्राय: 'पार' शब्द पर आग्रह रहता है, आप 'पार', 'पार' शब्द बोलते हैं। भन्ते ! 'पार' से आप का क्या

अभिप्राय है ? पार किसे कहते है ?" शास्ता ने मार को जान कहा, "पापी ! तुझे पार और अपार से क्या लेना देना ? तुझे पार से क्या पार का अर्थ किनारे के "उस पार" से है जिस पर आस्रव मुक्त अर्हत् ही पहुंच सकते हैं। उसे तो वीतराग ही पाते हैं। 'पार' का अर्थ होता है—आंख, कान, नाक, जीभ, काया, मन, जो ये स्थूल इन्द्रिया हैं, जिनकी सीमा है, ये पार हैं और जिसकी सीमा नहीं है, जो बड़ा है, सूक्ष्म है, स्थूल नहीं है—रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श और धर्म, जो इन्द्रियों से नहीं जाना जाता है, मगर मन से जाना जाता है, ये अपार है। रूप, शब्द आदि की सूचना ही देती है इन्द्रियां परन्तु सौन्दर्य आदि के सूक्ष्म अनुभव मन देता है। इन्द्रियों के अनुभव पार हैं, वहीं मन के अनुभव अपार हैं। इन पार और अपार दोनों के ही आगे अनत्ता हैं। वह पार से पार और अपार से भी पार है। पार-अपार दोनों से अपार है। शेष जो रह जाता है, शून्य ! ऐसा जो वीतभय (निर्भय) जिसके पार भीतर के छः आयतन (आंख, कान, नाक आदि) और अपार (बाहर के छः आयतन रूप, शब्द आदि) और पारापार (मैं और मेरा) नहीं है, उस निडर और अनासक्त को मैं ब्राह्मण (भिक्खु) कहता हूं।" ऐसे कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

385. यस्सं पारं अपारं वा, पारापारं न विज्जति।
वीतद्दरं विसंञ्युत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.3।।

***अर्थ** : जिसके पार अपार और पारापार नहीं है, जो निर्भय और अनासक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : **पारं** = भीतर के छः आयतन (आंख, कान, नाक, जीभ, काया, मन)। **अपार** = बाहर के छः आयतन (रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श, धर्म)। **पारपारं** = मैं और मेरा। "पार ति अज्झत्तिकानि छः आयतनानि, अपार ति बहिरानि छः आयतनानि, तदुभयं न विज्जतीति यस्स सब्बं पेतं' अहं' ति ममं' ति वा गहणभावेन-नत्थि' —बुद्धघोस।

वग्ग 26, गाथा 4

उत्तमार्थ-प्राप्त ब्राह्मण है

(किसी ब्राह्मण की कथा, स्थान—जेतवन)

386. भगवान के जेतवन में विहरते समय एक ब्राह्मण ने भगवान के पास जाकर पूछा, "हे गौतम ! आप अपने श्रावकों को ब्राह्मण कहकर पुकारते हो। मैं तो जाति से ही ब्राह्मण हूं। क्या मुझे ब्राह्मण नहीं पुकारा जाना चाहिए ?" भगवान ने कहा, "मैं जाति-गोत्र से ब्राह्मण नहीं कहता हूं, केवल उत्तमार्थ अर्हत्त्व प्राप्त को ही ब्राह्मण कहता हूं। जो ध्यानी, निर्मल, आसनबद्ध (स्थिर) कृत-कृत्य, आस्रव रहित (चित्त के मैलों से रहित), जिसने उत्तम अर्थ (सत्य-निर्वाण) को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण (भिक्खु) कहता हूं।" यह कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

386. झायिं विरजमासीनं, कतकिच्चं अनासवं।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।। 26.4।।

***अर्थ** : जो ध्यानी, निर्मल, आसनबद्ध (=स्थिर), कृतकृत्य, आस्रव रहित है, जिसने उत्तमार्थ (=निर्वाण) को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : विरजं = रज (मल) रहित। **आसीनं** = स्थिर। **कतकिच्च** = कृतकृत्य। **उत्तमत्थमनुप्पत्तं** = उत्तम अर्थ (सत्य) को प्राप्त हुआ।

वग्ग 26, गाथा 5

बुद्ध सदा तपते हैं

(आनन्द थेर की कथा, स्थान—मिगारमातु प्रासाद)

387. एक बार आश्विन पूर्णिमा को कोसलराज पसेनदि भगवान से मिगारमातु-प्रासाद (पूर्वाराम) में मिलने आये। राजा उस समय अपनी पूर्ण राजकीय शोभा से युक्त था। उस समय थेर कालुदायी भी उसी आराम में एक कोने में ध्यान-रत थे। उनका शरीर भी तेजस्वी और स्वर्णिम आभा से युक्त था। थेर आनन्द ने उस समय आकाश की ओर देखा, सूरज अस्तांचल की ओर जा रहा था और चन्द्रमा खिल रहा था। सूर्य और चन्द्रमा दोनों अपनी रश्मियां प्रस्फुटित कर रहे थे।

थेर आनन्द ने राजा के प्रकाश को देखा, थेर के प्रकाश को देखा, सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाश को देखा और अन्तिम रूप से उसने भगवान के आभा-मण्डल की ओर भी देखा। उस समय भगवान के आभा-मण्डल से अलौकिक रश्मियां प्रस्फुटित हो रही थीं, जो इन सभी दूसरी आभाओं से अद्वितीय थीं। भगवान बुद्ध के ऐसे आलोक को देखकर थेर आनन्द भगवान के पास गए और प्रणाम कर कहा, "भन्ते ! आपकी काया से प्रकाशित आभा-आलोक, राजा के प्रकाश, थेर के प्रकाश, सूर्य के प्रकाश और चन्द्रमा के प्रकाश से बढ़कर है। आज मुझे प्रकाश देखते समय आपका ही प्रकाश सबसे बढ़कर मिला।"

भगवान ने कहा, "आनन्द ! ऐसा ही है। यह बुद्धत्त्व का प्रकाश है, यह समाधि की ज्योति है। दिन में केवल सूरज तपता है, दिन में केवल सूरज प्रकाश देता है। रात में चन्द्रमा तपता है, रात में चन्द्रमा प्रकाश देता है। अलंकृत होने पर राजा तपता है, राजा रत्न जटिन सिंहासन पर, बहुमूल्य वस्त्रों को पहनकर, हीरे-मोती के आभूषणों से अलंकृत होकर प्रकाशित होता है। ध्यानी होने पर ब्राह्मण तपता है, ध्यान की झलक आने लगती है, तो प्रकाश देता है। इन सब की सीमा है, परन्तु बुद्ध की कोई सीमा नहीं, उनकी सब सीमांए समाप्त हैं। आनन्द ! सूरज दिन में चमकता है और रात्रि में चन्द्रमा। राजा अलंकृत होने पर सुशोभित होता है और अर्हत् एकान्त में बैठकर समापति में होने पर, किन्तु बुद्ध लोग रात में भी, दिन में भी पांच प्रकार के तेज से सुशोभित होते हैं। बुद्ध रात-दिन अपने तेज से तपते हैं।" ऐसा कह यह गाथा कही—

387. दिवा तपति आदिच्चो, रत्तिं आभाति चन्दिमा।
सन्नद्धो खत्तियो तपति, झायी तपति ब्राह्मणो।
अथ सब्बमहोरत्तिं, बुद्धो तपति तेज़सा ।। 26.5।।

अर्थ : दिन में सूरज तपता है, रात्रि में चन्द्रमा प्रकाश करता है। (आभूषणों से) अलंकृत होने पर राजा तपता है, ध्यानी होने पर ब्राह्मण तपता है और बुद्ध रात-दिन (अपने) तेज से तपते हैं।

शब्दार्थ : सब्बमहोरति = रात-दिन, हमेशा। **बुद्धो तपति तेजसा** = बुद्ध अपने (पंचविधि) तेज से तपता है।"

सम्मासम्बुद्धो पन शील तेजेन दुस्सीलतेजं, गुणतेजेन निग्गुणतेजं, पञ्ञातेजेन दुप्पञ्ञातेजं, पञ्ञातेजेन अपुञ्ञातेजं, धम्मतेजेन, अधम्मतेजं परिमादयित्वा इमिना पंचविधेन तेजेन निच्चकालमेव विरोचति" बुद्धघोस।

वग्ग 26, गाथा 6

ब्राह्मण, श्रमण और प्रव्रजित क्यों ?

(किसी ब्राह्मण प्रव्रजित की कथा, स्थान—जेतवन)

388. सावत्थि में एक ब्राह्मण था, परिव्राजक था, उसने बुद्ध, धम्म और संघ में दीक्षा नहीं ली थी। एक दिन उसके मन में विचार आया कि बुद्ध अपने शिष्यों को प्रव्रजित कहते हैं, मैं भी तो प्रव्रजित हूं न ? अतः वह भी प्रव्रजित कहलाया जाना चाहिए। ऐसा सोच वह भगवान के पास जेतवन विहार में गया और पूछा कि 'उसे प्रव्रजित क्यों नहीं कहा जाये ?' भगवान ने कहा, "ब्राह्मण प्रव्रजित होने मात्र से मैं प्रव्रजित नहीं कहता, किन्तु जिसने अपने चित्त के मलों को हटा दिया है, उसी को प्रव्रजित कहता हूं। जिसने पाप को धोकर बहा दिया है, वह ब्राह्मण है, जो समता का आचरण करता है, वह श्रमण है, चूंकि उसने अपने चित्त मलों को हटा दिया है, इसलिए वह प्रव्रजित कहा जाता है।" ऐसा व्यक्त कर भगवान ने यह गाथा कही—

388. वाहितपापोति ब्राह्मणो, समचरिया समणोति वुच्चति।
पब्बाजयमत्तनो मलं, तस्मा पब्बजितोति वुच्चति।। 26.6।।

***अर्थ** : जिसने पाप को धोकर बहा दिया है, वह ब्राह्मण है। जो समता का आचरण करता है, वह श्रमण है, (चूंकि) उसने अपने (चित्त) मलों को हटा दिया है, इसलिये वह प्रव्रजित कहा जाता है।*

शब्दार्थ : समचरिया = समता का आचरण करने वाला। **पब्बाजयमत्तनो मलं** = अपने मैल को हटाता हुआ।

वग्ग 26, गाथा 7-8

ब्राह्मण को मारना महापाप है

(सारिपुत्त थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

389-390. सावत्थि नगरवासी बहुत से मनुष्य एक स्थान पर एकत्र होकर सारिपुत्त थेर के धैर्य और सहनशीलता की प्रशंसा कर रहे थे। उनके शिष्य कह रहे थे, "हमारे आर्य ऐसे सहनशील हैं कि आक्रोशन करने वालों या मारने वालों पर भी क्रोध नहीं करते हैं।" इस तरह की बातें थेर सारिपुत्त के बारे में प्रायः हुआ करती थीं। वहां पर एक मिथ्यादृष्टि ब्राह्मण भी बैठा था, वह इसे सुन रहा था और ईर्ष्या एवं क्रोध में जला जा रहा था। यह बात उसे गले नहीं उतरी, वह बोला, "उन्हें कोई क्रोधित करना जानता ही नहीं होगा, देखो इसे मैं क्रोधित करता हूं।"

नगरवासी बोले, "यदि तुम उन्हें क्रोधित कर सकते हो, तो करो।" उस ब्राह्मण ने दोपहर में सारिपुत्त को भिक्खाटन करते देख पीछे से जाकर पीठ पर मारा। थेर सारिपुत्त ने पीछे मुड़कर भी नहीं देखा, बल्कि वे अपनी धीर-गम्भीर संयत मुद्रा में विहरते रहे, जैसे कुछ हुआ ही नहीं है। कोई

प्रतिक्रिया होती हुई न देख ब्राह्मण शर्मसार होने लगा। उसको अपने किए पर अफसोस होने लगा और सोचा, "मैंने ऐसे गुणवान भिक्खु को मारा है, महा अपराध किया है।" ऐसा सोचकर उस ब्राह्मण ने थेर सारिपुत्त के पैरों पर गिरकर क्षमा मांगी और थेर को अपने घर ले जाकर भोजन कराया।

जब सारिपुत्त भोजन करके विहार आए, तब भिक्खुओं ने आपस में बात करनी शुरू की, "आयुष्मान, सारिपुत्त ने अच्छा नहीं किया, जो कि मारने वाले ब्राह्मण के घर ही भोजन किया, वह अब किसे बिना मारे छोड़ेगा। अब तो वह भिक्खुओं को मारते हुए ही विचरण करेगा।" शाम को भिक्खुओं ने इस घटना की जानकारी महाकारुणिक भगवान को दी।

शास्ता ने भिक्खुओं की बात सुन कर कहा, "भिक्खुओ ! एक सच्चा ब्राह्मण किसी सच्चे ब्राह्मण को नहीं मारता है। केवल एक साधारण आदमी या साधारण ब्राह्मण ने क्रोध या बुरी धारणा से मारा होगा। यह क्रोध अनागामी मार्ग से नाश हो जाता है। सारिपुत्त ने वही किया है, जो कि ब्राह्मण (भिक्खु) के योग्य है। ब्राह्मण (निष्पाप) पर प्रहार नहीं करना चाहिये और ब्राह्मण को भी उस प्रहारकर्त्ता पर कोप नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण (भिक्खु) को, जो मारता है, उसे धिक्कार है और धिक्कार है, उसको भी, जो उसके लिए कोप करता है। ब्राह्मण (भिक्खु) के लिए यह बात कम कल्याणकारी नहीं है, जो कि वह प्रिय पदार्थों से मन को हटा लेता है, मन का निषेध कर लेता है। जैसे-जैसे हिंसक मन निवृत्त होता है, जहां-जहां मन हिंसा से मुड़ता है, वहां-वहां दुख अवश्य ही शान्त हो जाता है।" ऐसा कहा भगवान ने ये गाथाएं कहीं—

389. न ब्राह्मणस्स पहरेय्य नास्स मुञ्चेथ ब्राह्मणो।
धि ब्राह्मणस्स हन्तारं ततो धि यस्स मुञ्चति।। 26.7।।

***अर्थ** : ब्राह्मण (भिक्खु) पर प्रहार नहीं करना चाहिये और ब्राह्मण (भिक्खु) को भी उस (प्रहारकर्त्ता) पर कोप नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण (भिक्खु) को जो मारता है, उसे धिक्कार है और धिक्कार है उसको भी जो (उसके लिए मारने वाले पर) कोप करता है।*

390. न ब्राह्मणस्सेतद किञ्चि सेय्यो, यदा निसेधो मनसो पियेहि।
यतो यतो हिंसमनो निवत्तति, ततो ततो सम्मति मेव दुक्खं।। 26.8।।

***अर्थ** : ब्राह्मण (भिक्खु) के लिए यह बात कम कल्याणकारी नहीं है, जो वह प्रिय (पदार्थों) से मन को हटा लेता है, जहां-जहां से मन हिंसा से मुड़ता है, वहां-वहां से दुख (अवश्य) ही शान्त हो जाता है।*

शब्दार्थ : पहरेय्य = प्रहार करे। **मुंचेथ** = टूट पड़े। **धी** = धिक्कार है। **यस्स** = उस पर। **ब्राह्मणस्सेतद किञ्चि सेय्यो** = ब्राह्मण के लिए कर्म श्रेयस्कर। **पियेहि** = प्रिय वस्तुओं से। **हिंसमनो** = हिंसक मन।

वग्ग 26, गाथा 9

त्रि-संवरयुक्त ब्राह्मण है

(महापजापति गोतमी की कथा, स्थान—जेतवन)

391. महापजापति गोतमी भगवान की सौतेली मां थी। राजकुमार सिद्धार्थ के जन्म के सात

दिन बाद महारानी महामाया का देहावसान हो जाने पर महापजापति गोतमी को महाराज शुद्धोदन सिद्धार्थ के पालन-पोषण का दायित्व सोंपा था। उस समय महापजापति का अपना पुत्र नन्द पांच दिन का ही था। उसने अपने पुत्र नन्द की इतनी परवाह न करते हुए राजकुमार सिद्धार्थ को अपना दूध पिलाकर पाला-पोसा था। महापजापति गोतमी के तुल्य दुनिया में कोई दूसरी विमाता नहीं हुई है, वह अद्वितीय थी। भगवान बुद्ध के लिए वह महत्ती कल्याणदायिनी थी।

बुद्धत्व प्राप्ति के बाद जब भगवान कपिलवत्थु में विहार कर रहे थे, तब महापजापति ने भगवान के विहार में जाकर भगवान से निवेदन किया था कि भगवान के भिक्खुसंघ में स्त्रियों को भी उपसम्पदा मिले, परन्तु भगवान ने इसे स्वीकार नहीं किया था। महाराज शुद्धोदन के अर्हत्त्व प्राप्त कर परिनिर्वृत हो जाने के बाद, भगवान के वेसाली के पास महावन में विहरने के समय महापजापति पांच सौ महिलाओं के साथ कपिलवत्थु से वेसाली तक पैदल गयी। उन्होंने अपने बाल मुंडवा दिये और अपने ही हाथों से रंग कर भगवा चीवर धारण कर लिये थे। महापजापति ने वहां दूसरी बार भगवान से औरतों को प्रव्रज्या देने का निवेदन किया।

आनन्द थेर ने इस अवसर पर महापजापति के पक्ष को भगवान के सामने समुचित ढंग से उजागर किया था। अस्तु, भगवान बुद्ध ने महापजापति को आठ गुरुधर्मों की पालना के बारे में बताया। महापजापति ने उन धर्मों के पालन की हां भी भरी और भगवान ने औरतों के लिए संघ के द्वार सदा-सदा के लिए खोल दिये। इस प्रकार महापजापति भगवान बुद्ध के भिक्खुणीसंघ की श्राविकाओं में 'प्रथम' बनी। उनके साथ आयी दूसरी औरतों को भी बाद में उपसम्पदा दी गयी।

कुछ समय बाद कुछ भिक्खुओं के मन में विचार आया कि महापजापति की उपसम्पदा समुचित रूप से नहीं हुई है। उसका संघ में प्रवेश सही ढंग से नहीं हुआ है उसका कोई आचार्य, उपाध्याय नहीं है, अपने मन में ऐसे विचार रखते हुए वे महापजापति के साथ उपोसथ और पवारणा करने में संकोच करने लगे। भगवान जेतवन में विहरते थे, उन भिक्खुओं ने भगवान के पास जाकर कहा, "भन्ते ! महापजापति गोतमी ने अपने ही हाथों वस्त्र रंगकर चीवर पहन ली है, उसका कोई भी आचार्य या उपाध्याय नहीं है, हमें उसके साथ उपोसथ आदि करने में संकोच होता है।" ऐसा सुनने पर भगवान ने कहा, "भिक्खुओ ! ऐसा क्यों कह रहे हो ? मैंने महापजापति को आठ गुरुधर्मों को दिया है, उसने उनको जाना है एवं वह उनका अभ्यास भी करती है। मैं ही उसका आचार्य हूं, मैं ही उपाध्याय हूं। काय दुष्चरित से रहित क्षीणास्रवों के प्रति संकोच नहीं करना चाहिये। जिसको मन, वचन और काय से दुष्कृत (पाप) नहीं होते, जो इन तीनों ही स्थानों से संवर-युक्त है, उसे मैं ब्राह्मण (भिक्खु) कहता हूं।" ऐसा कह भगवान ने यह गाथा कही—

391. यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कतं।
संवुतं तीहि ठानेहि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.9।।

अर्थ : जिसके मन, वचन और कार्य से दुष्कृत (=पाप) नहीं होते, (जो इन) तीनों ही स्थानों से संवर-युक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

शब्दार्थ : **यस्स** = जो। **कायेन** = काया से। **वाचाय** = वाणी से। **मनसा** = मन से। **दुक्कटं** = नत्थि = दुष्कर्म नहीं करता है। **संवुतं** = संवरयुक्त है। **तीहि ठानेहि** = इन तीन ही स्थानों से। **तमहं** = उसको मैं। **ब्राह्मणं ब्रूमि** = ब्राह्मण कहता हूं।

वग्ग 26, गाथा 10

बुद्ध धम्मोपदेशक को नमस्कार करे

(सारिपुत्त थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

392. स्थविर सारिपुत्त उपतिष्य नगर के एक ब्राह्मण कुल में जन्मे थे, उनकी माता का नाम सारि था। उनके घनिष्ठ मित्र कोलित की माता का नाम मोग्गलि था और वे भी ब्राह्मण थे। दोनों पक्के और घनिष्ठ मित्र थे। दोनों ने साथ-साथ उपसम्पदा ग्रहण की थी। सारिपुत्त थेर ने अश्वजित के पास जाकर धम्म-श्रवण कर स्रोतापति फल को प्राप्त किया था। वह हमेशा यह बात याद रखते थे कि उन्होंने थेर अश्वजित के माध्यम से ही मृत्यु के पार का दर्शन किया है और भगवान बुद्ध से मिलन हुआ है। इसलिये वे हमेशा अपने आचार्य के प्रति आदर व्यक्त करने हेतु सोते समय जिस दिशा में अश्वजित थेर होते थे। उधर हाथ जोड़कर उसी ओर सिर करके सोते थे।

जेतवन विहार में दूसरे भिक्खु भी उनके साथ विहरते थे, उन्होंने सारिपुत्त के इस कृत्य का अन्यथा अर्थ लगाया और वे भगवान के पास जाकर बोले, "भन्ते! जान पड़ता है, सारिपुत्त आज भी मिथ्यादृष्टि-सम्पन्न ही हैं, वे सदा दिशा नमस्कार करते हैं"। भगवान ने उनकी बात सुनकर सारिपुत्त थेर को बुलाया और उनसे पूछा, "क्या सारिपुत्त ! यह ठीक है कि तुम दिशा-नमस्कार करते हो ?" सारिपुत्त ने कहा, "भगवान ! आप तो स्वयं जानते ही हैं। मैं पूर्व-पश्चिम आदि किसी दिशा को नमस्कार नहीं करता हूं। मैं तो अपने आचार्य जिधर रहते हैं, उधर हाथ-जोड़कर उनकी कृतज्ञता व्यक्त करता हूं.....।" भगवान ने सारिपुत्त के यह कहने पर कहा, "भिक्खुओ ! सारिपुत्त दिशा नमस्कार नहीं करता है, प्रत्युत अपने आचार्य को नमस्कार करता है। जिस आचार्य के सहारे वे भिक्खु धर्म जाने, उसे अपने उस आचार्य को नमस्कार करना ही चाहिये। भिक्खुओ ! जिससे सम्यकसम्बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म को जाने, उसका सत्कार कर उसे नमस्कार करे, जैसे ब्राह्मण अग्निहोत्र को नमस्कार करता है उसका सम्मान करता है।" ऐसा कह भगवान ने यह गाथा कही—

392. यम्हा धम्मं विजानेय्य, सम्मासम्बुद्धदेसितं।
सक्कच्चं तं नमस्सेय्य, अग्गिहुत्तं व ब्राह्मणो।। 26.10।।

अर्थ : जिस (आचार्य) से सम्यकसम्बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म को जाने, उसे वैसे ही सत्कारपूर्वक नमस्कार करे, जैसे अग्निहोत्र को ब्राह्मण करता है।

शब्दार्थ : सक्कच्चं = सत्कार करके। **नमस्सेय्य** = नमस्कार करे। **अग्गिहुत्तं** = अग्निहोत्र।

वग्ग 26, गाथा 11

जटा-गोत्र से ब्राह्मण नहीं

(जटिल ब्राह्मण की कथा, स्थान—जेतवन)

393. भगवान के जेतवन में विहरते समय एक दिन एक जटाधारी ब्राह्मण ने सोचा कि भगवान अपने शिष्यों के प्रव्रजितों को ब्राह्मण कहते हैं। वह तो ब्राह्मण मां-बाप से पैदा हुआ ही ब्राह्मण है, इसलिये भगवान द्वारा उसे भी ब्राह्मण कहा जाना चाहिये। ऐसा सोच वह भगवान के पास गया और कहा, "हे गौतम ! आप अपने श्रावकों को ब्राह्मण कहते हैं, मैं भी माता-पिता से सुजात ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूं, क्या आप मुझे ब्राह्मण कह सकते हैं ?" भगवान ने उसकी बात को नकारते हुए कहा, "ब्राह्मण ! मैं न जटा धारण करने मात्र से और न जाति गोत्र से ब्राह्मण कहता हूं, प्रत्युत जिसने सत्य को प्राप्त कर लिया है, वही ब्राह्मण है। न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से कोई ब्राह्मण होता है प्रत्युत जिसमें सत्य और धर्म है, वही शुचि (पवित्र) और ब्राह्मण है।" ऐसा कह भगवान ने यह गाथा कही—

393. न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो।। 26.11।।

अर्थ : (कोई) न जटा से, न गोत्र से और न जन्म से ब्राह्मण होता है, जिसमें सत्य और धर्म है, वही शुचि (=पवित्र) और वही ब्राह्मण है।

शब्दार्थ : **जटाहि** = क्योंकि उसकी जटा हैं। **गोत्तेन** = गोत्र के द्वारा। **ब्राह्मणो ने होति** = कोई ब्राह्मण नहीं होता है। **जच्चा** = जन्म से। **यम्हि** = जिसमें। **सच्चं** = सत्य की जागरूकता। **धम्मो च** = धार्मिकता। **सो** = वही। **सुचि** = पवित्र। **सो च ब्राह्मणो** = वही वास्तव में ब्राह्मण है।

वग्ग 26, गाथा 12

स्नान से पाप नहीं कटता

(पाखण्डी ब्राह्मण की कथा, स्थान—कूटागारसाला, वेसाली)

394. एक बार एक पाखण्डी ब्राह्मण वेसाली के नगरद्वार के पास एक पेड़ पर चढकर दोनों पैरों को वृक्ष की डाल में लगाकर नीचे की ओर सिर कर के बड़बड़ाने लगा, मुझे सौ गायें दो, कार्षापण दो, यदि नहीं दोगे तो मैं इस पेड़ से गिर कर मर जाऊंगा और तुम्हारा नगर उजड़ जायेगा, उजाड़ दूंगा। लोगों ने इस डर से कि अगर ब्राह्मण नीचे गिर कर मर गया, तो शहर उजड़ जायेगा, जो-जो वस्तुएं उस पाखण्डी ने मांगी, सब ले जाकर उसको दे दीं और उससे नीचे उतरने का अनुरोध किया। भिक्खुओ ने भिक्खाटन करते हुए यह देखा था। उन्होंने शास्ता के पास जाकर कहा। शास्ता ने कहा, "भिक्खुओ ! न केवल इसी समय वह पाखण्डी है, पहले भी पाखण्डी था, किन्तु उस समय पण्डितों को नहीं ठग सका।" "पाखण्डी ! धर्त्त अबोध (अज्ञानियों) को ही ठग सकता है, बुद्धिमानों को नहीं ठग सकता।" ऐसा कहकर गोधजातक (जा.स. 325) का उपदेश

दिया, "हे दुर्बुद्धि ! जटाओं से तेरा क्या बनेगा ? मृग चर्म पहनने से तेरा क्या होगा ? तेरा अन्तर तो विकारों से भरा है, बाहर क्या धोता है ?" ऐसा कह भगवान ने यह गाथा कही—

394. किं ते जटाहि दुम्मेध, किं ते अजिनसाटिया।
अब्भन्तरं ते गहनं, बाहिरं परिमज्जसि।। 26.12।।

अर्थ : हे दुर्बुद्धि ! जटाओं से तेरा क्या (बनेगा, और) मृगचर्म के पहनने से तेरा क्या ? भीतर (मन) तो तेरा (राग आदि मलों से) परिपूर्ण, है बाहर क्या धोता है ?

शब्दार्थ : दुम्मेध = हे, दुर्बुद्धि। **ते** = तुम्हारा। **जटाहि** = जटाओं से। **किं** = क्या। **ते** = तुम्हारा। **अजिन साटिया** = हिरन की खाल। **किं** = क्या प्रयोग। **ते अब्भन्तरं** = अंदर से। **गहनं** = गहन यानी सबसे ज्यादा। **बाहिरं** = बाहर से। **परिमज्जसी** = साफ करते हो।

वग्ग 26, गाथा 13

वही ब्राह्मण है

(किसा गोतमी की कथा, स्थान—गिज्झकूट)

395. भगवान के गृध्रकूट पर्वत पर विहरते समय एक रात शुक्र देव-परिषद के साथ भगवान के पास आकर कुशल क्षेम पूछ रहा था। उसी समय किसा गोतमी भी भगवान को वन्दना करने आयी, परन्तु उसने शुक्र को देखकर भगवान को दूर से ही प्रणाम किया और लौट गयी। उसकी वन्दना सुनकर शक्र ने भगवान से पूछा कि यह नारी कौन थी जो आपको आकाश से ही प्रणाम करके लौट गयी है। भगवान ने कहा, "महाराज ! यह किसा गोतमी नामक मेरी पुत्री है। एक बार वह मेरे पास अपने पुत्र के मृत्यु होने पर खिन्न, उदास और दुखी होकर आयी थी। मैंने उसे अनित्यता, अनात्मता और दुख को समझाया। उसके फलस्वरूप उसने स्रोतापत्ति फल को प्राप्त किया, वह मेरे भिक्खुणीसंघ में पांशुकुल चीवर धारण करने वाली थेरियों में अग्र है। जो पंशुकुल (फटे चीथड़ों से बना चीवर) को धारण करता है, जो दुबला-पतला और नसों से मढ़े शरीर वाला है, जो अकेला वन में ध्यानरत रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

395. पंसुकूलधरं जन्तुं, किसं धमनिसन्थतं।
एकं वनस्मिं झायन्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.13।।

अर्थ : जो पांशुकूल (=फटे चीथड़ों से बना चीवर) को धारण करता है, जो दुबला-पतला और नसों से मढ़े शरीर वाला है, जो अकेला वन में ध्यानरत रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

शब्दार्थ : पंसुकूलधरं = रज का ढेर धारण करने वाले। **किसं** = कृश। **धमनिसन्थतं** = धमनियों का जाल।

वग्ग 26, गाथा 14

अपरिग्रही और त्यागी ब्राह्मण है

(एक ब्राह्मण की कथा, स्थान—जेतवन)

396. सावत्थि में एक ब्राह्मण ने भगवान के पास जाकर पूछा, "हे गौतम ! आप अपने शिष्यों

को ब्राह्मण कहते हैं, मैं भी तो ब्राह्मण योनि में उत्पन्न हुआ हूं, क्या मैं ब्राह्मण नहीं हूं ? इसे सुनकर शास्ता ने कहा, "ब्राह्मण ! मैं ब्राह्मण योनि से उत्पन्न होने मात्र से ब्राह्मण नहीं कहता, जो अपरिग्रही और निर्मल है, वही ब्राह्मण है। ब्राह्मण योनि में उत्पन्न होने वाले अथवा ब्राह्मण माता से उत्पन्न व्यक्ति को मैं ब्राह्मण नहीं कहता। वह तो "भो वादी" (अहंकारी) होता है और संग्रही होता है। जो अकिंचन और लेने की इच्छा न करने वाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान बुद्ध ने यह गाथा कही—

396. न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि, योनिजं मत्तिसम्भवं।
'भो वादी' नाम सो होति, स चे होति सकिञ्चनो।।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.14।।

अर्थ : माता की योनि से उत्पन्न होने के कारण किसी को मैं ब्राह्मण नहीं कहता हूं, वह तो केवल "भो वादी" है, वह तो संग्रही है। मैं ब्राह्मण उसे कहता हूं, जो अपरिग्रही और त्यागी है।

शब्दार्थ : मत्तिसम्भवं = माता से उत्पन्न को। योनिज = योनि से उत्पन्न। भोवादी = 'अरे' कहने वाला। सकिञ्चिनो = संग्रही।

वग्ग 26, गाथा 15

संग और आसक्ति-विरत ब्राह्मण है

(उग्गसेन की कथा, स्थान—जेतवन)

397. सावत्थि में उग्गसेन श्रेष्ठीपुत्र एक नट कन्या से विवाह कर अपने ससुर से लम्बे-लम्बे ऊंचे बांसों पर करतब दिखलाना सीख कर, सावत्थि में एक दिन अपनी कला का प्रदर्शन कर रहा था, उस समय भगवान का उपदेश सुनकर वह अर्हत्त्व को प्राप्त हुआ था और बांस से नीचे उतर कर भगवान से उसने प्रव्रजित होने की आज्ञा मांगी थी। भगवान ने उसके निवेदन को स्वीकार कर उसे भिक्खुसंघ में प्रविष्ट कर लिया था।

एक दिन अन्य भिक्खुओं ने उससे पूछा कि क्या उसे ऊंचे-ऊंचे बांसों पर चढ़ते हुए डर नहीं लगता था, तब उसने बताया कि उसे ऐसा करने में कोई भय नहीं लगता था। भिक्खुओं ने भगवान को कहा कि, "भन्ते ! उग्गसेन 'नहीं डरता हूं' कहकर अर्हत्त्व प्राप्ति की बात करता है, वह झूठ बोल रहा है।" तब भगवान ने कहा, "भिक्खुओ ! मेरे पुत्र उग्गसेन जैसे बन्धनों के काटे हुए व्यक्ति डरते नहीं हैं। जो सारे संयोजनों को काटकर भयरहित हो जाता है, और संग और आसक्ति से विरत हो जाता है, उसका मैं, मेरा और ममत्व सब छूट जाता है। बन्धन मुक्त उग्गसेन जैसा व्यक्ति डरता नहीं है। उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं। "यह कहकर भगवान ने जेतवन में यह गाथा कही—

397. सब्बसञ्ञोजनं छेत्वा यो वे न परितस्सति।
संगातिगं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.15।।

अर्थ : जो सारे संयोजनों (=बन्धनों) को काटकर, (तृष्णा से) नहीं डरता है, उस (राग आदि के) संग और आसक्ति से विरत को मैं ब्राह्मण कहता हूं।

शब्दार्थ : परितस्सति = भयभीत होता है।

वग्ग 26, गाथा 16

बुद्ध ब्राह्मण है

(दो ब्राह्मणों की कथा, स्थान, जेतवन)

398. सावत्थि में दो ब्राह्मण रहते थे। उन दोनों के पास बलिष्ठ बैल थे। दोनों अपने बैलों को एक दूसरे से बढ़िया और बलवान कहते थे। इस बात पर उनमें आपस में विवाद होता रहता था। इस विवाद के निपटारे हेतु उन्होंने अपने बैलों का परीक्षण करने पर सहमति बना ली और अचिरावती नदी के किनारे गए एवं गाड़ी में बालू लाद कर उनसे बैलों को जोता और हांकने लगे। रस्सी, नद्धा सब टूट गया, किन्तु गाड़ी ने अपनी जगह नहीं छोड़ी। इसे देखकर भिक्खुओं ने जेतवन में जाकर भगवान से कहा। तब भगवान ने उन भिक्खुओं को कहा, "भिक्खुओ ! जिन रस्सियों को आपने अपनी आंखों से देखा है, उन्हें तोड़ना सरल है, उनको कोई भी तोड़ सकता है। ये बाहरी रस्सी और नद्धे हैं, जो इसे कोई भी काट दे। भिक्खु को भीतर के नद्धे तथा तृष्णा की रस्सी को काटना चाहिये। जैसे पशु नाथ, रस्सी, मुछीका और अर्गला (शृंखला या जुआ) से बन्धा रहता है, इनसे पृथक होने पर ही वह सुख अनुभव करता है। इसी प्रकार मनुष्य भी लौकिक सुखों की रस्सी से बन्धा है, उसके मुख पर भी कपड़ा बंधा रहता है, राग, द्वेष और मोह का कठोर बन्धन है, अविद्या रूपी अर्गला उस बन्धन को और सुदृढ बना देती है। अतः इन समी से विरक्त और प्रबुद्ध-पूर्णतया ज्ञानी ही ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी है।" नन्दि (लौकिक सुख, नन्द्धा-क्रोध, द्वेष) को, वरत (रस्सी, तृणा) को सहनुककमं (जाल, मुछीका छः प्रकार की दृष्टियां) सहित काटकर पलिघ (अर्गला बन्धन) अनुशय और अविद्या को फेंक देने वाले बुद्ध को मैं ब्राह्मण कहता हूं।" यह कह भगवान ने यह गाथा कही—

398. छेत्वा नदिं वरत्तञ्च, सन्दामं सहनुक्कमं।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.16।।

***अर्थ** : मुसीका, पगहा, नाथ और रस्सी को काटकर तथा जूये (=अविद्या) को फेंक, जो बुद्ध हुआ, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : नन्दिं = लौकिक सुखों को। **'नदिं'** पाठ होने पर नाथ (द्वेष) अर्थ लेना होगा। **वरत्तं** = रस्सी को (सं. वरत्रम्) अर्थात् राग को। **सन्दानं** = बन्धन अर्थात् मोह को। **सहनुक्कमं** = जाल (मुछीका) सहित। **अक्खित्त पलिघं** = अर्गला (अविद्या) को फेंक दिया है जिसने।

वग्ग 26, गाथा 17

क्षमा-बली ब्राह्मण है

(आक्रोसक-भारद्वाज की कथा, स्थान—वेणुवन)

399. राजगृह में धनञ्जानी नाम की एक ब्राह्मणी स्रोतापत्ति फल प्राप्त करने के समय से,

किसी भी बहाने से, फिसलने पर या खांसने पर सदा "नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स" कहती रहती थी। बुद्ध की उपासना का भाव सदा उसके मन मस्तिष्क में बना रहता था। कोई भी बहाना मिले, वह चूकती नहीं थी।

एक दिन उसके घर भोज था। काम की भागा-भागी में उसका पैर फिसल गया और बोल पड़ी, "नमो तस्स भगवतो अरहत्तो सम्मासम्बुद्धस्स।" भोज में सारे ब्राह्मण इकट्ठे थे। सारा परिवार इकट्ठा था। पति था, पति के भाई थे, नाते-रिश्तेदार थे। धनञ्जानी ब्राह्मणी के मुख से भगवान की वन्दना सुनकर उस औरत के पति के भाई भारद्वाज ने उसे डांटा, "नष्ट हो दुष्टा ! जहां नहीं, वहां भी उस मुण्डे श्रमण की प्रशंसा करती रहती है।" और कहा, "आज मैं श्रमण गौतम के साथ शास्त्रार्थ करूंगा।" धनञ्जानी बोली, "नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।" "जाओ ब्राह्मण ! शास्त्रार्थ करो, उन भगवान के साथ शास्त्रार्थ हेतु कौन समर्थ है ? फिर भी तुम जाओ।"

ब्राह्मण क्रोध, अहंकार और विजय की महत्त्वाकांक्षा में जलता हुआ भगवान बुद्ध के पास पहुंचा। भगवान के पास पहुंचते ही वह शीतल हो गया। उसका सारा क्रोध ठण्डा पड़ गया। अब वह विवाद से दूर मुमुक्षु बन कर खड़ा था। वह भगवान बुद्ध से समाधान करना चाह रहा था। भगवान बुद्ध से उसने जो पूछा उनका सही उत्तर पा उसका मन रूपान्तरित हो गया, वह प्रव्रजित हो अर्हत्त्व पा गया और फिर घर नहीं गया। उसके पश्चात आक्रोसन भारद्वाज को यह ज्ञात हुआ, तब वह भगवान को नाना प्रकार से आक्रोसन करता हुआ, गाली देता हुआ, असभ्य शब्दों को बोलता हुआ वेणुवन गया और उसने भी भगवान बुद्ध के मधुर शब्दों को सुनकर प्रव्रजित हो अर्हत्त्व प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार उसके सुन्दरिक भारद्वाज और विलिङ्गग्गक भारद्वाज नामक छोटे भाई भी शास्ता को बुरा-भला कहते हुए गए और प्रव्रजित हो अर्हत्त्व को पा गए।

एक दिन धर्म-सभा में भिक्खुओं ने इसकी चर्चा चलायी। वे आपस में कहने लगे, "आवुसो ! बुद्ध-गुण आश्चर्य हैं, चारों भाइयों के आक्रोसन करने पर भी शास्ता ने उनका उद्धार किया। शास्ता ने उनकी चर्चा को जानकर कहा, "भिक्खुओ ! क्षान्ति-बल (क्षमाबल) से युक्त होने के कारण, क्रोधियों पर क्रोध न करते हुए मैं महाजन-समूह का उद्धार करता हूं।" भगवान बोले, "जो दुष्ट नहीं है, वह आक्रोश (गाली), वध और बन्धन को सहन कर लेता है, क्षमा ही जिसका बल है तथा वही बल जिसका सेनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कह भगवान ने यह गाथा कही—

399. अक्कोसं वधबन्धञ्च, अदुट्ठो यो तितिक्खति।
खन्तिबलं बलानीकं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.17।।

***अर्थ** : जो बिना दूषित (=चित्त) किए गाली, वध, और बन्धन को सहन करता है, क्षमा-बल ही जिसके बल (=सेना) का सेनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : अक्कोसं = आक्रोश को। **वधबन्धं च** = बध और बन्धन को। **खन्तीबल** = क्षान्ति (क्षमा) बल को। **बलानीकं** = उसी बल की सेना वाले को।

वग्ग 26, गाथा 18

अन्तिम शरीरधारी ब्राह्मण है

(सारिपुत्त थेर की कथा, स्थान, वेणुवन)

400. भगवान के वेणुवन में विहरते समय एक दिन सारिपुत्त स्थविर पांच सौ भिक्खुओं के साथ भिक्खाटन करते हुए नालक गांव पहुंचे और सारिपुत्त व उनका भिक्खुसंघ सारिपुत्त की मां के द्वार पर पिण्डपात हेतु खड़े हो गए। थेर सारिपुत्त की मां ने उनको घर के अन्दर बुलाया और सबको भोजन कराया। वह भोजन परोसते समय सारिपुत्त को बुरा-भला कहे जा रही थी, "क्या तू जूठा खाने के लिए ही अस्सी करोड़ धन को छोड़कर प्रव्रजित हुआ है ?" आदि-आदि। सारिपुत्त ने उनके प्रत्युत्तर में कुछ भी नहीं कहा और बड़ी सहजता और सहनशीलता से भोजन ग्रहण किया।

भोजनोपरान्त वापस वे वेणुवन विहार में आए, तब भिक्खुओं ने भगवान बुद्ध को बताया कि थेर सारिपुत्त की मां ने कैसे फटकार लगायी और अपशब्द कहे तो भी थेर सारिपुत्त एक शब्द तक नहीं बोले। भगवान ने उस समय सारिपुत्त के गुणों की प्रशंसा करते हुए कहा कि "अर्हत कभी क्रोध नहीं करते हैं। आवुसो ! सारिपुत्त बहुत ही क्षमावान हैं, जिन्होंने क्रोध रंच मात्र भी नहीं किया, भिक्खुओ ! क्षीणास्रव क्रोध नहीं करते हैं। जो क्रोध न करने वाला, व्रती शीलवान, अनुत्सुक, दान्त (संयमी) और अंतिम शरीर वाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" यह कह भगवान ने यह गाथा कही—

400. अक्कोधनं वतवन्तं, सीलवन्तं अनुस्सुतं।
दन्तं अन्तिमसारीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.18।।

***अर्थ** : जो क्रोध न करने वाला, व्रती, शीलवान्, अनुत्सुक, दान्त (=संयमी), और अन्तिम शरीर वाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : अक्कोधनं = जो क्रोध नहीं करता। **वतवन्तं** = व्रती अर्थात संकल्प का धनी। **सीलवन्तं** = शीलवान। **अनुस्सदं** = अनुत्सुक यानी जिसे तृष्णा अभिभूत नहीं करती। **दन्तं** = संयम रखने वाला। **अन्तिम सारीरं** = अंतिम शरीर अर्थात जिसका यह अंतिम शरीर है, ऐसा ज्ञान रखने वाला। **तं** = उसे। **अहं** = मैं। **ब्रूमि** = कहता हूं।

वग्ग 26, गाथा 19

भोगों में अलिप्त ब्राह्मण है

(उप्पलवण्णा थेरी की कथा, स्थान—जेतवन)

401. एक समय कुछ भिक्खु थेरी उप्पलवण्णा के साथ नन्द द्वारा किए गए जोर जबरदस्ती को लेकर आपस में चर्चा कर रहे थे। कोई कह रहा था— "क्षीणास्रव भिक्खुओं को भी काम सुख स्वीकृत होते हैं। अन्य पक्ष का कहना था कि वे क्यों सेवन नहीं करते। क्या वे सुख ठूंठ वृक्ष हैं? आदि-आदि। वे भगवान के पास गए और पूछा कि, "भन्ते ! क्या अर्हत् भी काम सेवन करते हैं।" भगवान ने उसे सुनकर कहा, "भिक्खुओ ! अर्हत् इन्द्रिय-आनन्द (काम) में लिप्त नहीं होते हैं, न उपभोग करते हैं। न तो वे इन्द्रियों में आसक्त होते हैं और न ही इन्द्रियों के आनन्द में ही आसक्त

होते हैं। क्षीणासव दोनों प्रकार के कामों का सेवन नहीं करते हैं। इस प्रकार जो कमल के पत्ते पर जल की तरह और आरे के अग्र भाग पर सरसों की तरह कामों में लिप्त नहीं होता है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं।" कह जेतवन में शास्ता ने यह गाथा कही—

401. वारि पोक्खरपत्ते'व, आरग्गेरिव सासपो।
यो न लिप्पति कामेसु, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.19।।

***अर्थ** : कमल के पत्ते पर जल और आरे की नोक पर सरसों की भांति जो भोगों में लिप्त नहीं होता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : पोक्खरपत्ते = पुष्कर पत्र पर। **आरग्गेरिव** = आरे के अग्रभाग पर। **इव** = जैसे। **सासपो** = सरसों।

वग्ग 26, गाथा 20

आसक्त रहित ब्राह्मण है

(किसी ब्राह्मण की कथा, स्थान—जेतवन)

402. सावत्थि में एक ब्राह्मण के पास एक तरुण नौकर (दास) था। उसने घर से भागकर भिक्खुओं के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण करली और अर्हत्त्व को प्राप्त कर लिया। एक समय वह भगवान बुद्ध के साथ भिक्खाटन को जा रहा था, तो उसके पुराने मालिक ब्राह्मण ने उसे देख लिया। उस ब्राह्मण ने भगवान के पीछे-पीछे जाकर उस अर्हत् के चीवर को जोर से पकड़ लिया। भगवान ने पीछे मुड़कर उसे पकड़ा हुआ देख कहा, "ब्राह्मण ! यह फेंके बोझवाला है। इसने बोझ को फेंक दिया है—अर्हत् बन चुका है।" ब्राह्मण ने अर्हत्त्व समझ चीवर छोड़ दिया और बोला, "ऐसा है गौतम ?" शास्ता ने कहा, "हां, ब्राह्मण ! फेंके बोझवाला है। जो यहीं 'इसी जन्म में अपने दुख के विनाश को जान लेता है, जिसने अपने बोझ को उतार फेंका और जो आसक्ति रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" यह कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

402. यो दुक्खस्स पजानाति, इधेव खयमत्तनो।
पन्नभारं विसञ्ञुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मण।। 26.20।।

***अर्थ** : जो यहीं (=इसी जन्म में) अपने दुख के विनाश को जान लेता है, जिसने अपने बोझ को उतार फेंका और जो आसक्ति रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : पजानाति = जानता है। **पन्नभारं** = भार फेंक देने वाले को। "ओहितखन्धभारं"-बुद्धघोसः।

वग्ग 26, गाथा 21

मार्ग-अमार्ग का ज्ञाता ब्राह्मण है

(खेमा भिक्खुणी की कथा, स्थान—गिज्झकूट पब्बत)

403. भगवान के गृद्धकूट पर्वत पर विहरते समय एक रात शक्र देव-परिषद सहित भगवान की वन्दना को उपस्थित हुआ। वह अपनी देव-परिषद के साथ भगवान के पास ही था, उसी समय

खेमा भिक्खुणी भगवान को प्रणाम करने आकाश-मार्ग से आयी। शक्र को वहां देखकर वह भगवान को आकाश से ही प्रणाम करके लौट गयी। शक्र ने भगवान से पूछा, "भन्ते ! यह आने वाली कौन भिक्खुणी थी, जो जाती हुई आपको आकाश से ही प्रणाम कर लौट गयी ?" शास्ता ने कहा, "महाराज यह खेमा नामक महाप्रज्ञावान मेरी पुत्री है। भिक्खुणियों में, प्रज्ञा में उसके समान कोई नहीं है, वह गलत और सही में भेद करना जानती है, यह मार्ग-अमार्ग की जानकार मेरी पुत्री है।" उन्होंने आगे कहा, "जो गम्भीर प्रज्ञावाला, मेधावी, मार्ग-अमार्ग का ज्ञाता, उत्तम अर्थ (निर्वाण) को प्राप्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

403. गम्भीरपञ्ञं मेधाविं मग्गामग्गस्स कोविदं।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.21।।

अर्थ : जो गम्भीर प्रज्ञावाला, मेधावी, मार्ग-अमार्ग का ज्ञाता, उत्तम अर्थ (=निर्वाण) को पाये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

शब्दार्थ : **गम्भीरपञ्ञं** = जो गंभीर प्रज्ञा वाला है। **मेधाविं** = बुद्धिमान है। **मग्गामग्गं** = सुमार्ग और कुमार्ग का। **कोविदं** = ज्ञान रखने वाला। **उत्तमत्थं** = निर्वाण को। **अनुप्पत्तं** = प्राप्त कर चुका है। **तं** = उसे। **अहं** = मैं, **ब्राह्मणं** = ब्राह्मण। **ब्रूमि** = कहता हूं।

वग्ग 26, गाथा 22

संग्रह-रहित ब्राह्मण है

(कन्दरावासी तिस्स थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

404. थेर तिस्स ने शास्ता के पास कर्मस्थान ग्रहण कर ध्यान विपश्यना हेतु एक पर्वत की ओर प्रस्थान किया। उन्होंने एक कन्दरा को देख, वहीं ध्यान-विपश्यना करने का निश्चय किया और वर्षावास भी वहीं बिताया। वे प्रतिदिन सुबह भिक्खाटन हेतु गांव में जाया करते थे। गांव में गृहस्थ उन्हें भोजनदान दिया करते थे। उस गुफा में एक देवता वास करता था। थेर तिस्स परिशुद्ध आचरण वाले थे, इस कारण देवता उनके साथ नहीं रहना चाहता था, परन्तु उसमें थेर को कन्दरा छोड़ देने का कहने का साहस नहीं था। इसलिये उसने एक योजना बनायी कि थेर में कुछ कमी ढूंढी जाय और इस बहाने थेर को यह जगह छोड़ने के लिए कह दिया जायेगा। अस्तु, उसने एक उपासिका के पुत्र के शरीर पर आवेश करके कहा, "तुम लोग स्थविर के पैर के धोवन को इसके सिर पर डालो, तो मैं इसे छोड़ दूंगा।"

दूसरे दिन थेर जब उसके घर भिक्खाटन हेतु आए, तो उस उपासिका ने वैसा ही किया। कन्दरा का देवता वापस कन्दरा में जा थेर का इन्तजार करने लगा। जब थेर भिक्खाटन से वापस लौटे तो कन्दरा का देवता द्वार पर खड़ा हुआ बोला, "महावैद्य ! यहां प्रवेश मत करो।" थेर जानते थे कि जबसे उन्होंने उपसम्पदा ग्रहण की है, वे अपने शील से परिशुद्ध हैं। अतः पूछा, "मैंने क्या वैद्यकर्म किया है ?" "मुझे कोई किए हुए वैद्यकर्म का ज्ञान नहीं है।" तब कन्दरा का देव उसे

उलाहना देते हुए बोला कि उसने एक वृद्ध उपासिका के एक तरुण युवक को ठीक किया है। थेर ने यह जताया कि यह कोई वैद्यकर्म नहीं है। ऐसा कहने पर भी कन्दरा का देवता और कोई दोष न देखते हुए लांछन लगता रहा, इस बात को जानकर उनमें बलवती प्रीति उत्पन्न हो गयी और वे वहीं ध्यान-विपश्यना रत हो गए। उन्हें उसी समय अर्हत्त्व की उपलब्धि हुई।

अर्हत थेर ने कन्दरा के देवता को सलाह दी कि वह कन्दरा को छोड़ दे। वे बोले, "देवता! तू यहां से निकल जा। तेरे जैसे व्यक्ति के साथ मेरे जैसे परिशुद्ध का संवास नहीं हो सकता है।" थेर तिस्स ने पूरा वर्षावास वहां बिताया और फिर भगवान के पास जेतवन विहार चले गए।

जब थेर तिस्स ने इस घटना को अन्य भिक्खुओं के सामने उजागर किया, तो अन्य भिक्खुओं ने उनसे पूछा, "आवुस ! देवता के मना करने पर तुम्हें क्रोध उत्पन्न नहीं हुआ।" थेर तिस्स ने इस बात का जवाब नकारात्मक दिया, परन्तु अन्य भिक्खुओं को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। अस्तु; वे भगवान के पास गए और बोले, "भन्ते ! थेर अपनी अर्हत्त्व प्राप्ति बतला रहे हैं, ऐसे बात कर रहे हैं, जैसे कि उन्हें अर्हत्त्व प्राप्त हो गया हो, लगता है वे सत्य नहीं बोल रहे हैं।"

तब भगवान ने कहा, "भिक्खुओ ! मेरा पुत्र तिस्स सत्य कह रहा है, वह क्रोध नहीं करता। वह वस्तुतः अर्हत्त्व प्राप्त है। उसकी अब किसी में आसक्ति नहीं है। अब किसी के भी साथ क्रोध करने का कोई अवसर उसके पास नहीं रह गया है। यह गृहस्थ और अनागार (बिना घर वाला) दोनों से ही संसर्ग विहीन है और जिसका गृहस्थ और अनागार, दोनों से ही संसर्ग नहीं रहता, जो बिना ठिकाने के घूमता तथा अल्पेच्छ है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

404. असंसट्ठं गहट्ठेहि, अनागारेहि चूभयं।
अनोकसारिं अप्पिच्छं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.22।।

***अर्थ** : गृहस्थ और बेघर वाले दोनों ही से जो संसर्ग नहीं रखता है, जो बिना ठिकाने के घूमता तथा अल्पेच्छ है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : असंसट्ठं = असम्पृक्त। **गहट्ठेहि** = गृहस्थ है। **अनागारेहि** = गृहविहीनों से। **अनोकसारिं** = बिना ठिकाने घूमने वाले को। **अप्पिच्छं** = अल्प इच्छा वाले को।

वग्ग 26, गाथा 23

अहिंसक ब्राह्मण है

(किसी भिक्खु की कथा, स्थान—जेतवन)

405. भगवान के जेतवन विहरते समय एक भिक्खु भगवान के पास जा कर्मस्थान ग्रहण करके अरण्य में ध्यान-विपश्यना करने लगा। उसे शीघ्र ही अर्हत्त्व की प्राप्ति हो गयी, अपने द्वारा पाये गए इस गुण को बतलाने के लिए उसने जेतवन की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में उसने एक गांव को पार किया। ज्योंही उसने गांव को पार किया, एक औरत अपने पति से झगड़ कर उसके घर को छोड़ अपने पीहर के लिए निकल पड़ी। वह उस भिक्खु के पीछे-पीछे चल रही थी।

उस औरत के पति ने अपनी पत्नी को घर में नहीं देख कर वह भी उसके पीछे-पीछे ही निकल पड़ा। उसने अपनी औरत को एक भिक्खु के पीछे जाते देख सोचा कि अवश्य ही यह इस भिक्खु द्वारा प्रायोजित की गयी है और वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा एवं उसने उस भिक्खु को मारना शुरू कर दिया। भिक्खु को बुरी तरह से मार-पीटकर वह अपनी स्त्री को लेकर वापस लौट गया।

जेतवन विहार पहुंचने पर अन्य भिक्खुओं ने उसकी इस दुर्दशा के बारे में पूछा, तो उस भिक्खु ने सारी घटना बता दी। भिक्खुओं ने कहा, "आवुस ! तुम्हें इतनी बुरी तरह से मारा, तुम्हें क्रोध नहीं हुआ।" भिक्खुओं ने इस बात को भगवान से निवेदित किया। तब भगवान ने कहा, "भिक्खुओ! अर्हत्त्व दण्ड और तलवार को दूर रखते हैं, क्षीणास्रव दण्ड रहित होते हैं, वे प्रहार करने वालों पर भी क्रोध नहीं करते हैं। मेरा यह पुत्र अर्हत बन गया है। जो चर-अचर सभी प्राणियों में प्रहार-विरत हो, जो न मारता है और न मारने की प्रेरणा करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कह भगवान ने यह गाथा कही—

405. निधाय दण्डं भूतेसु, तसेसु थावरेसु च।
यो न हन्ति न घातेति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.23।।

***अर्थ** : चर-अचर (सभी) प्राणियों में प्रहार-विरत हो, जो न मारता है, और न मारने की प्रेरणा करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : तसेसु = चर प्राणियों में। **थावरेसु** = स्थावर अर्थात् अचर प्राणियों में।

वग्ग 26, गाथा 24

संग्रह-रहित ब्राह्मण है

(चार सामनेरों की कथा, स्थान—जेतवन)

406. एक बार एक ब्राह्मण की पत्नी ने अपने पति को यह कहते हुए जेतवन विहार भेजा कि वह चार थेर भिक्खुओं को आमन्त्रित करके लाये, जो सच्चे ब्राह्मण भी हों। वह ब्राह्मण **संकिच्च, पण्डित, सोपाक** और **रेवत** इन सात वर्षीय अवस्था वाले सामनेरों के साथ घर आया। जब उसकी पत्नी ने इन तरुण सामनेरों को देखा तो वह बड़ी असन्तुष्ट हुई और अपने पति को इन्हें लाने पर भला-बुरा कहने लगी। वह कहने लगी कि किनको उठाकर ले आए, ये तो मेरे पोते से भी कम आयु के हैं, तुम्हें तो वृद्ध भिक्खुओं को लाने के लिए भेजा था। जाओ ! दुबारा जाओ और किसी वृद्ध भिक्खु को आमन्त्रित करके लाओ। उसने उन सामनेरों को नीचे आसनों पर बैठा दिया और उन्हें भोजन तक नहीं कराया।

ब्राह्मण विहार में जाकर सारिपुत्त थेर को आमन्त्रित कर घर ले आया। थेर सारिपुत्त ने वहां आकर उन चार सामनेरों से पूछा कि क्या उन्हें भोजनदान मिल चुका है। सामनेरों ने कहा अभी दिया जाना है। सारिपुत्त ने यह जानकर कि अर्हत सामनेरों को अभी भी भोजन प्राप्त नहीं हुआ और चार जनों के लिए ही भोजन बना है। वे 'मेरा पात्र लाओ' कहकर पात्र लेकर वापस चले

गए। ब्राह्मणी ने अपने पति को दुबारा विहार में वृद्ध भिक्खु को लाने के लिए भेजा। इस बार महा-मोग्गल्लान आए, परन्तु वे भी यही स्थिति देख अपना पात्र ले वापस विहार में आ गए।

उस समय तक सामनेर भूख से पीड़ित हो रहे थे। ब्राह्मणी ने अपने पति को कहा, "इस बार आप बूढे ब्राह्मण को ही ले आवें।" शक्र देख रहा था कि प्रातःकाल से ही सामनेर भूख से पीड़ित हैं, वह बूढ़े ब्राह्मण के वेश में आया। ब्राह्मण उसे देख प्रसन्न हो अपने घर लेकर आया। बूढे ब्राह्मण के वेश में शक्र ने आकर सामनेरों को प्रणाम कर सामनेरों से नीचे आसन को ग्रहण किया। ब्राह्मणी इस पर बड़ी नाराज हुई। शक्र भूमि पर बैठा रहा। ब्राह्मणी उसके इस कृत्य पर रुष्ठ हो उसे घर से निकालने पर आमादा हो गयी, परन्तु शक्र वहां से हटा नहीं। ब्राह्मण और ब्राह्मणी दोनों बहुत परेशान हो गए, परन्तु उसे निकाल नहीं पाये। अन्त में विवश हो उन सामनेरों के साथ उसे भी भोजन कराया।

भोजनोपरान्त चार ने तो आकाश मार्ग से और एक ने पृथ्वी मार्ग से प्रस्थान किया। सामनेरों के विहार में पहुंचने पर अन्य भिक्खुओं ने सारी बात जानकर पूछा, "क्या आवुसो ! ब्राह्मणी के क्रोधित पर तुम लोग क्रोधित नहीं हुए।" उन्होंने जब यह उत्तर दिया कि वे क्रोधित नहीं हुए, तो अन्य भिक्खुओं ने यह जानकर कि ये सामनेर सत्य नहीं कह रहे हैं, भगवान से कहा। तब भगवान ने कहा, "भिक्खुओ ! क्षीणास्रव विरोधियों के बीच विरोध नहीं करता है।" "जो विरोधियों के विरोध रहित है, जो दण्डधारियों के बीच दण्ड-रहित है, संग्रह करने वालों में जो संग्रह रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" विरोधियों के बीच अविरुद्ध, दण्डधारियों के बीच दण्ड से निवृत्त और संग्रह करने वालों के बीच जो असंग्रही है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

406. अविरुद्धं विरुद्धेसु, अत्तदण्डेसु निब्बुतं।
सादानेसु अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.24।।

***अर्थ** : जो विरोधियों के बीच विरोधरहित है, जो दण्डधारियों के बीच (दण्ड) रहित है, संग्रह करने वालों में जो संग्रह-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : **विरुद्धेसु** = विरोधियों में। **अविरुद्धं** = विरोधरहित। **अत्तदण्डेसु** = दण्डधारियों अर्थात अस्त्रधारियों में। **निब्बुतं** = शांत अर्थात दण्ड रहित। **सादानेसु** = स्वार्थियों में अर्थात संग्रह करने वालो में। **अनादानं** = संग्रहरहित। **तं** = उसे। **अहं** = मैं। **ब्रूमि** = कहता हूं।

वग्ग 26, गाथा 25

राग आदि से रहित ब्राह्मण है

(महापन्थक थेर की कथा, स्थान—वेणुवन)

407. थेर **महापन्थक** ने अपने कनिष्ठ भ्राता **चूलपंथक** के प्रव्रजित होने से पहले ही अर्हत्त्व प्राप्त कर लिया था। चूल पंथक मूढ मति था, वह चार महीनों में भी एक गाथा को नहीं सीख

सकता था। एक बार महापन्थक ने अपने छोटे भाई पर नाराज होते हुए, यह कहते हुए कि वह संघ के लायक नहीं है, उसे विहार से निकाल दिया था।

इस घटना को लेकर एक बार भिक्खुओं में यह चर्चा चली, "जान पड़ता है, क्षीणास्रवों (अर्हतों) में भी क्रोध होता है, जिससे कि महापंथक स्थविर ने चूल पंथक को विहार से निकाल दिया।" वे अर्हत हैं, फिर भी क्या उनमें दूसरों के प्रति क्रोध का आस्रव है ? आदि-आदि बातें करने लगे। भगवान ने उनकी ऐसी बातें सुनकर कहा, "भिक्खुओ ! क्षीणास्रवों में राग आदि क्लेश नहीं होते हैं। मेरे पुत्र महापंथक ने अपने भाई के भले के लिए, अर्थ और धर्म को देखते हुए ऐसा किया था।" वे बोले, "उसका तो राग, द्वेष, मोह और म्रक्ष (दम्भ) आरे के अग्र भाग से सरसों के समान गिर गया है। जिसकी नोक से सरसों के दाने गिर पड़ते हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा वेणुवन विहार में कही—

407. यस्स रागो च दोसो च, मानो मक्खो च पातितो।
सासपोरिव आरग्गा, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.25।।

***अर्थ** : आरे के ऊपर सरसो (के दाने) की भांति, जिसके (चित्त से) राग, द्वेष, मान, म्रक्ष, (=अमरख) फेंक दिये गए हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : यस्स = जिसके द्वारा। **राग** = राग। **दोस च** = और द्वेष। **मानो** = घमण्ड। **मक्खो च** = अमरख यानी अकृतज्ञता। **आरग्गा** = आरे/सुई के ऊपर। **सासपो इव** = सरसों की भांति। **पातितो** = गिरा दिये गए हैं। **तं** = उसे।

वग्ग 26, गाथा 26

सत्य-वक्ता ब्राह्मण है

(पिलिन्दवच्छ थेर की कथा, स्थान, वेणुवन)

408. पिलिन्दवच्छ थेर प्रव्रजितों और गृहस्थों को भी, "आओ वसल, जाओ वसल इधर बैठो वसल, उधर बैठो वसल।" आदि कहकर बुलाते थे। भिक्खुओं को यह बात अच्छी नहीं लगी, उन्होंने भगवान को इसका निवेदन किया। भगवान ने पिलिन्दवच्छ को बुलाकर इस सच्चाई को पूछा, तो उसने इसका 'हां' में जवाब दिया। तब भगवान ने कहा, "भिक्खुओ ! वच्छ पर तुम रुष्ट मत होवो ! मेरे पुत्र ने पहले के अनगिनत भवों में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो 'वसलवाद' का अभ्यास किया है, यह उसके अभ्यास या आदत के कारण ही है, दूसरों को मर्माहत करने के लिए वह ऐसा नहीं बोलता है। जो आकर्षक, ज्ञानवर्धक और सत्यवाणी बोलता है, जिससे किसी को पीड़ा नहीं पहुंचती, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने वेणुवन में यह गाथा कही—

408. अकक्कसं विञ्ञापनिं, गिरं सच्चं उदीरये।
याय नाभिसजे कञ्चि, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.26।।

***अर्थ** : जो ऐसे अकर्कश, सार्थक तथा सत्य-वचन को बोले, जिससे कुछ भी पीड़ा न होवे, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : विञ्ञपनिं = विज्ञापनी अर्थात् ज्ञानवर्द्धक। **नाभिराजे** = पीड़ा न पहुंचे।

वग्ग 26, गाथा 27

बिना दिये न लेने वाला ब्राह्मण है

(किसी स्थविर की कथा, स्थान—जेतवन)

409. एक बार सावत्थि में एक ब्राह्मण ने अपनी चादर को उतार कर घर के किनारे हवा में रख दिया। वह चादर हवा से उड़कर घर से दूर जा पड़ी। उसी समय एक अर्हत भिक्खु भिक्खाटन कर विहार की ओर जा रहे थे। उन्होंने उस वस्त्र को पंशुकुल समझ कर उठा लिया। ब्राह्मण ने अपने वस्त्र को उन्हें ले जाते हुए देख, उनके पीछे दौड़ा और भिक्खु को भला बुरा कहने लगा। भिक्खु ने, "ब्राह्मण। यह तेरा वस्त्र है, किन्तु मैंने तो इसे पंशुकुल समझकर उठाया था।" कहकर उसे वापस दे दिया।

विहार में पहुंचने पर उन्होंने इस घटना की जानकारी अन्य भिक्खुओं को दी, तो अन्य भिक्खु उसका मजाक उड़ाने लगे। वे कहने लगे, "आवुस ! वह वस्त्र कैसा था ? छोटा, लम्बा, मोटा या महीन था।" स्थविर ने उनका जवाब देते हुए कहा, "आवुसो ! मुझे उसमें राग नहीं है। मैंने तो उसे केवल पंशुकुल समझकर ही उठा लिया था।" भिक्खु फिर उसका मजाक उड़ाने लगे और बोले, "मुझे इसमें राग नहीं है।" कहकर झूठ बोलते हो और अपना अर्हत्त्व प्रकट करना चाहते हो। उन्होंने इस बात को भगवान को बताया। भगवान उस समय जेतवन विहार में विहरते थे, बोले, "भिक्खुओ ! यह सत्य कह रहा है, क्षीणास्रव दूसरों की वस्तुओं को ग्रहण नहीं करते हैं। जो इस संसार में न दी गई वस्तु को, चाहे वह दीर्घ हो या ह्रस्व हो, चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म हो तथा चाहे शुभ हो या अशुभ हो, ग्रहण नहीं करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

409. योध दीघं वा रस्सं वा, अणुं थूलं सुभासुभं।
लोके अदिन्नं नादियते, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.27।।

***अर्थ** : जो दीर्घ, ह्रस्व, मोटी या पतली, शुभ या अशुभ—संसार में (किसी भी) बिना दी गई वस्तु को नहीं लेता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : **इध लोके** = इस संसार में। **यो** = जो। **दीघं वा** = लंबी। **रस्सं वा** = अथवा छोटी। **अणुं** = अतिसूक्ष्म। **थूलं वा** = अथवा मोटी। **सुभासुभं** = शुभ और अशुभ अर्थात अच्छी-बुरी। **अदिन्नं** = बिना दी हुई वस्तु को। **न आदियति** = नहीं लेता है। **तं** = उसे।

वग्ग 26, गाथा 28

आशा-रहित ब्राह्मण है

(सारिपुत्त थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

410. सारिपुत्त स्थविर एक बार पांच सौ भिक्खुओं के साथ एक देहात के विहार में गए और

वहां वर्षावास किया। वर्षावास में भिक्खुओं को उपासकों द्वारा चीवर आदि वर्षावासिक वस्त्रों को देने का वचन दिया गया था। पवारणा के बाद स्थविर सारिपुत्त आवासिक भिक्खुओं को यह कहकर कि उपासकों द्वारा वर्षावासिक वस्त्र मिलने पर उन्हें सामनेरों के साथ मुझे भेज देना या मुझे सूचना दे देना और भगवान बुद्ध के दर्शनार्थ जेतवन चल दिये। अन्य भिक्खुओं ने इसका गलत अर्थ लगाया।

जब स्थविर जेतवन पहुंचे और भिक्खुओं ने उस बात को सुना, तो उन्होंने भगवान से कहा, "भन्ते ! जान पड़ता है कि सारिपुत्त आज भी चीवर आदि वस्तुओं में आसक्त हैं। आज भी सारिपुत्त स्थविर को तृष्णा है ही।" भगवान ने उन्हें कहा, "भिक्खुओ ! मेरे पुत्र सारिपुत्त को कोई तृष्णा नहीं है। उसने तुम्हें चीवर आदि लाने को कहा, ताकि मनुष्यों के इस कृत्य द्वारा किए जाने वाले पुण्य में कमी नहीं हो और सामनेर चीवर लाभ से वंचित नहीं हों, ऐसा सोचकर ही उसने ऐसा कहा है। सारिपुत्त की तो इस लोक और परलोक के विषय में कोई आशाएं या तृष्णा नहीं रह गयी है। न तो यह यहां कुछ चाहता है और न वहां कुछ चाहता है, जो कुछ चाहता ही नहीं है, वह अचाह को उपलब्ध हो गया है। यह तो ऐसा निराशय और असंग है। जिसकी इस लोक में और परलोक में आशाएं (तृष्णा) नहीं है, जो आशा (तृष्णा) रहित (निराशय) और अनासक्त (विसयुंत आसक्ति रहित) हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

410. आसा यस्स न विज्जन्ति, अस्मिं लोके परम्हि च।
निरासयं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.28।।

***अर्थ** : इस लोक और परलोक के विषय में जिसकी आशाएं (=तृष्णा =चाह) नहीं रह गई हैं, जो आशारहित और आसक्तिरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : **यस्स** = जिसकी। **अस्मिं लोके** = इस लोक अर्थात इस साढ़े तीन हाथ की काया में। **परम्हि च** = पर लोक अर्थात अन्य दूसरी पृथ्वी जैसी भूमि पर। **आसा** = तृष्णायें। **न विज्जन्ति** = विद्यमान नहीं है। **निरासासं** = तृष्णा रहित। **विसंयुत्तं** = आसक्ति रहित। **तं** = उसको। **अहं** = मैं।

वग्ग 26, गाथा 29

निर्वाण प्राप्त ब्राह्मण है

(महामोग्गल्लान थेर की कथा, स्थान, जेतवन)

411. एक बार भिक्खुओं ने थेर महामोग्गल्लान के बारे में भी ऐसी ही बातें कीं, जैसी कि सारिपुत्त के बारे में (गाथा-110) की थी। तब शास्ता ने कहा कि महामोग्गल्लान की किसी में आसक्ति नहीं है, वह तृष्णारहित है। इसका कोई आलय (तृष्णा) नहीं है, इसकी किसी वस्तु में संलिप्तता नहीं है। यह जानकर संशयरहित, वीतसंदेह हो गया है, इसने किसी के कहने से या मान्यता से किसी बात को मानकर सन्देह का निवारण नहीं किया है, बल्कि न कही हुई को स्वयं जानकर संदेह से रहित हुआ है। इसमें डूबकर, बैठकर अगाध अमृत को पाया है। भिक्खुओ ! जिसे

तृष्णा नहीं है, जो जानकर संशयरहित (वीत संदेह) हो गया है तथा पैठकर अगाध अमृतपद (निर्वाण) को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं। ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

411. यस्सालया न विज्जन्ति, अञ्ञाय अकथंकथी।
अमतोगधं अनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.29।।

***अर्थ** : जिसे आलय (=तृष्णा) नहीं है, जो जानकर संशयरहित हो गया है तथा जिसने पैठकर अमृतपद निर्वाण को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : आलया = तृष्णायें। **अञ्ञाय** = जानकर। **अकथंगथी** = न कही हुई को कहने वाला। **अमतोगधं** = अगाध अमृतत्व।

वग्ग 26, गाथा 30

पुण्य-पाप रहित ब्राह्मण है

(रेवत थेर की कथा, स्थान—पुब्बाराम, सावत्थि)

412. एक दिन भिक्खुओं ने भगवान से कहा, "भन्ते ! थेर रेवत को उपासकों द्वारा बहुत लाभ-सत्कार मिलता है। उनके पास ऋद्धि-सिद्धी है, जिसके बल पर वे अलौकिक विहार बना कर रह सकते हैं, जैसा कि भगवान के रेवत के वहां पधारने पर उसने निर्मित किया था, पांच सौ भिक्खुओं ने वहां आराम किया था।" भगवान ने रेवत की प्रशंसा की और कहा कि भिक्खुओ ! मेरे पुत्र रेवत के न पुण्य हैं और न पाप। इसके दोनों ही आस्रव प्रहीण हो गए हैं, वह ब्राह्मण हो गया है। जिसने पुण्य और पाप दोनों ही में आसक्ति को छोड़ दिया है, जो विगतशोक याने शोक रहित (असोकं), निर्मल (विरज) और शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं। ऐसा कह पूर्वाराम विहार में यह गाथा कही—

412. योध पुञ्ञञ्च पापञ्च, उभो संग उपच्चगा।
असोकं विरजं सुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.30।।

***अर्थ** : जिसने यहां पुण्य और पाप दोनों की आसक्ति को छोड़ दिया है, जो शोक-रहित, निर्मल और शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : **इध** = इस संसार में। **यो** = जो। **पुञ्ञं** = पुण्य। **पापं च** = और पाप। **उभो** = दोनों को। **संग** = आसक्ति को। **उपच्चगा** = छोड़ चुका है। **असोकं** = शोकरहित। **विरजं** = निर्मल। **सुद्धं** = शुद्ध। **तं** = उसे।

वग्ग 26, गाथा 31

तृष्णा-नष्ट ब्राह्मण है

(चन्दाभ थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

413. राजगृह में **चन्दाभ** नामक एक ब्राह्मण था। वह अपने पूर्व-जन्म में भगवान कस्सप-बुद्ध के चैत्य में चन्दन लगाया करता था, जिसके पुण्य से इस जन्म में उसकी नाभि से चन्द्र-मण्डल

सदृश आभा निकलती थी। कुछ पाखण्डी ब्राह्मण उसे नगर-नगर लेकर घूमते थे और लोगों को लूटते थे। वे घूमते हुए "जो इसके शरीर को स्पर्श करता है, वह जो चाहता है, पाता है" कहते और खूब धन लेकर उसके शरीर का स्पर्श करवाते थे।

एक समय जब भगवान बुद्ध जेतवन में विहरते थे, तब उसे लिए हुए वे ब्राह्मण सावत्थि पहुंचे। संध्या का समय था और सारा सावत्थि नगर भगवान बुद्ध के दर्शन और धम्म-श्रवण के लिए जेतवन की ओर जा रहा था। उन ब्राह्मणों ने लोगों को रोककर चन्दाभ के चमत्कार को दिखाना चाहा, लेकिन कोई रुकना ही नहीं चाहता था। ब्राह्मण भी भगवान के अनुभाव को देखने के लिए चन्दाभ को लेकर जेतवन विहार में चले गए।

भगवान के पास जाते ही चन्दाभ की आभा लुप्त हो गयी। चन्दाभ अति दुखित हुआ और चमत्कृत भी। उसने समझा कि शास्ता आभा लुप्त करने का मन्त्र जानते हैं। अतः भगवान से कहा, "हे गौतम ! मुझे भी आभा को लुप्त करने का मन्त्र दीजिये और उस मन्त्र को काटने की विधि भी बताइये।" भगवान ने कहा, "मैं प्रव्रजित होने पर ही दे सकता हूं।" चन्दाभ भगवान की बात सुनकर प्रव्रजित हो गया और उसने यान मग्न हो थोड़े ही दिनों में अर्हत्त्वपद पा लिया। अब वह मन्त्र पाना भूल गया। उसे तो महामन्त्र मिल गया था। थोड़े दिन बाद वह ब्राह्मण उसे वापस लेने को आए तो वह बोला, "तुम लोग जाओ, मैं तो अब नहीं जाने वाला हो गया हूं। मेरा तो आना-जाना सब मिट गया है।"

भिक्खुओं ने इस बात को सुना और चर्चा की कि चन्दाभ अभी-अभी तो प्रव्रजित हुआ है और कहता है कि मैं आने-जाने से मुक्त हो गया हूं, यह तो सरासर झूठ बोल रहा है। उन्होंने भगवान से इस बात का निवेदन किया। तब भगवान ने कहा, "भिक्खुओ ! मेरे पुत्र की तृष्णा क्षीण हो गयी है, यह सत्य ही कहता है। अब चन्दाभ ब्राह्मण ही हो गया है। वह ठीक चन्द्रमा की भांति अब हुआ है, पहले तो केवल इसका नाम ही था। तब तो इसकी नाभि में जरा सी ज्योति थी, पर अब तो वह ज्योति सब तरफ फैल गयी है, वह ज्योति स्वरूप हो गया है, उसमें तृष्णा नहीं बची है, उसकी वासना भस्मीभूत हो गयी है। वह चन्द्रमा की भांति विमल, विशुद्ध और स्वच्छ हो गया है। जो चन्द्रमा की भांति विमल, शुद्ध, स्वच्छ हो गया है, तथा जिसकी सभी जन्मों की तृष्णा नष्ट हो गयी है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

413. चन्दं'व विमलं सुद्धं, विप्पसन्नमनाविलं।
नन्दीभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.31।।

***अर्थ** : जो चन्द्रमा की भांति विमल, शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल है तथा जिसकी सभी जन्मों की तृष्णा नष्ट हो गई, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : अनाविलं = निष्कलंक। **नन्दीभवपरिक्खीणं** = संसार के आनन्द पूरी तरह नष्ट हो गए हैं जिसके, उसे।

वग्ग 26, गाथा 32

मोह-त्यागी ब्राह्मण है

(सीवलि थेर की कथा, स्थान—कुण्डकोलिय, कुण्डधान वन)

414. कुण्ड कोलिय जनपद की राजकुमारी **सुप्रवासा** भगवान की श्राविका-उपासिका थी। वह **सात वर्ष तक गर्भधारण** किए रही और सात दिन तक उसे भयंकर दर्द होता रहा। असह्य प्रसव **वेदना को लेकर** उसने अपने पति को कहा, "मैं वेदना में त्रस्त हूं, मृत्यु से पूर्व मेरी एक इच्छा **है कि आप** तथागत की सेवा में जाइये और मेरी अवस्था बताइये, उन्हें आमन्त्रित कीजिये।" **सुप्रवासा** के पति ने भगवान के पास जाकर वन्दना की और निवेदन किया, "भन्ते ! सुप्रवासा **कोलिय** कन्या ने भगवान की सेवा में निवेदन किया, कि वह गर्भवती है, समय बीत गया है, प्रसव **पीड़ा** से व्यथित है, मृत्यु जैसे समीप आती जा रही है।" भगवान ने कहा, "आयुष्मान ! जाओ, वह **प्रसन्न** होगी। स्वस्थ होगी। उसे पुत्ररत्न प्राप्त होगा। पुत्र स्वस्थ होगा, हृष्ट-पुष्ट होगा।"

राजा के घर पहुंचने से पहले ही सुप्रवासा को सुखकारी प्रसव हुआ—उसे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। सुप्रवासा की दयनीय-व्यथित दशा को देखकर अनुचर-परिचारिकायें घेर कर खड़ी थीं, वे भी प्रसन्न हो उठे, निराशा से आशा ने जन्म ले लिया। लोग आनन्दित थे। राजा प्रसन्नता से सुप्रवासा के पास गया। भगवान ने जो कुछ कहा था, वह उसने अक्षरक्षः बताया। भगवान के सम्मान में सात दिन तक उत्सव मनाया गया। कुटुम्बियों के हृदयों को प्रसन्नता से पूरित करता हुआ पुत्र उत्पन्न हुआ था, अतएव उसका नाम 'सीवली' अर्थात शुभ रख दिया गया।

एक दिन सारिपुत्त सीवली के घर गए। सीवली से बात हुई, सुप्रवासा से बात हुई। सीवली प्रव्रजित होना चाहता था। सुप्रवासा ने आज्ञा दी। सीवली प्रव्रजित हो गया। सारिपुत्त ने सीवली को प्रव्रजित कर कहा, "आयुष्मान ! तुम्हें विशेष उपदेश की आवश्यकता नहीं है, तुम्हें लम्बे काल तक यह दुख क्यों भोगना पड़ा, इसी में धर्म का रहस्य छुपा है, इसी पर ध्यान करो, मनन करो, विपश्यना करो।" सीवली का प्रथम मुण्डन हुआ, वह स्रोतापन्न हुआ। दूसरा मुण्डन हुआ वह सकृदागामी हुआ, इसी प्रकार प्रत्येक मुण्डन पर वह एक ध्यान से दूसरे ध्यान को प्राप्त करता गया और इस प्रकार उसके ज्ञान चक्षु खुल गए, वह अर्हत्त हो गए।

भिक्खुओ में एक दिन चर्चा चली। भगवान से निवेदन किया, "भन्ते! आश्चर्य है, सीवली इतने दिनों तक गर्भ में कैसे रहा ? यह आश्चर्य है ? अर्हत्त प्राप्ति के उपनिश्रय पुण्य होने पर भी किस प्रकार वह माता के गर्भ में दुख भोगता रहा। भगवान ने उसके पूर्व जन्म की बात बताकर कहा, "भिक्खुओ ! सीवली दुखों से निवृत्त हो चुका है। निर्वाण का उसने साक्षात्कार किया है। मेरा पुत्र इतने दुखों से छूटकर इस समय निर्वाण का साक्षात्कार करके विहर रहा है। जिसने इस दुर्गम संसार (जन्म-मृत्यु), चक्कर में डालने वाले मोहरूपी उल्टे मार्ग को त्याग दिया है, जो संसार से पारंगत ध्यानी तथा तीर्ण (तर गया) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा सावत्थि के पुब्बाराम विहार में कही—

414. यो इमं पलिपथं दुग्गं, संसारं मोहमच्चगा।
तिण्णो पारगतो झायी, अनेजो अकथंकथी।
अनुपादाय निब्बुतो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ 26.32॥

अर्थ : जिसने इस दुर्गम संसार, (जन्म मृत्यु) चक्कर में डालने वाले मोह (रूपी) उलटे मार्ग को त्याग दिया है, जो (संसार से) पारंगत, ध्यानी तथा तीर्ण (=तर गया) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

शब्दार्थ : पलिपथं = उल्टे रास्ते को। **मोहमच्चगा** = मोहम् + अत्यागत्। **अनेजो** = निडर।

वग्ग 26, गाथा 33

भोग तथा जन्म-नष्ट ब्राह्मण है

(सुन्दर समुद्र थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

415. सावत्थि में एक धनी सेठ था, उसके सुन्दर समुद्र नामक एक कुलपुत्र था। वह मां-बाप से आज्ञा ले प्रव्रजित हो, सावत्थि से दूर राजगृह में जाकर ध्यान-विपश्यना करने लगा। एक समय सावत्थि में एक उत्सव हो रहा था, सुन्दर समुद्र के मां-बाप और परिवार वालों को उसकी याद सताने लगी। वे अपने पुत्र की अनुपस्थिति को लेकर बड़े दुखी हुए और रोने लगे। उसी समय एक गणिका वहां आयी, उसने रोने का कारण जानकर कहा, "अगर मैं आपके पुत्र को संघ से निकाल कर ले आऊं और गृहस्थ बना दूं, तो आप मुझे क्या इनाम दोगे ?"

सुन्दर के मां-बाप ने कहा कि उसे मुंह-मांगा ईनाम दिया जायेगा, उसे मालामाल कर दिया जायेगा। उस गणिका ने उस समय सुन्दर समुद्र के मां-बाप से भारी धनराशि ले अपने अनुचरों के साथ राजगृह की ओर प्रस्थान किया।

राजगृह में जाकर उसने एक सात मंजिला प्रासाद किराये पर लिया, जो भिक्षु सुन्दर समुद्र के भिक्षाटन के रास्ते में पड़ता था। सुन्दर समुद्र उसी रास्ते से भिक्षाटन हेतु जाया करते थे। पहले पहल वह थेर सुन्दर समुद्र को प्रातःकाल यवागु और दोपहर में भोजन तैयार कर घर के द्वार पर ही देती थी। धीरे-धीरे उसने थेर को कहना शुरू किया, "भन्ते ! यहीं बैठकर खाइये।" और थेर को वहीं बैठाकर खिलाना प्रारम्भ किया।" दो-तीन दिन बाद वह कहने लगी, "भन्ते ! अन्दर आइये, बाहर लड़के धूल-उड़ाते हैं।" और थेर को अन्दर बैठाकर खिलाने लगी। एक दिन उसने लड़कों को प्रलोभन देकर कहा कि जब थेर आवे, तब वह खूब हल्ला करें। लड़कों ने थेर को आता देख वैसा ही किया। गणिका को बहाना मिल गया और जब थेर भिक्षाटन हेतु आए तो वह बोली, "भन्ते ! नीचे लड़के बहुत हल्ला करते हैं, ऊपर चलिये।" ऐसा कहकर वह ऊपरी मंजिल की ओर थेर को आगे चला, पीछे से प्रत्येक किवाड़ बन्द करती हुई वह भी ऊपर चल दी।

सातवीं मंजिल पर पहुंच कर थेर को बैठा, उन्हें लुभाने लगी। उसने चालीस प्रकार के हाव-भाव और स्त्री लीला को प्रदर्शित कर कहा, "आप भी तरुण हैं और मैं भी तरुणी हूं, आइये जीवन का आनन्द लें, वृद्धावस्था में हम दोनों प्रव्रजित होंगे।" थेर को अपनी गलती का अहसास

होने लगा। विनय से संवृत थेर को महासंवेग हुआ और विचार किया, "अहो ! मैंने कितना बड़ा अपराध किया, जो बिना विचारे यहां आया।" उसी समय सर्वज्ञ महाकारुणिक गंधकुटी विहार में बैठे हुए थे, उन्हें गणिका और भिक्खु के बीच होते हुए संग्राम का नजारा दिखा। उन्होंने थेर आनन्द को बुलाकर कहा, "आनन्द! राजगृह के उस सात-मंजिले प्रासाद में अब सुन्दर समुद्र और एक गणिका के बीच संग्राम हो रहा है, लेकिन अन्त में थेर की ही जीत होगी।" ऐसा कह वहां बैठे हुए ही भगवान ने प्रकाश व्याप्त करते हुए थेर सुन्दर समुद्र को सम्बोधित किया, "भिक्खु ! दोनों ही भोगों को इच्छा रहित हो त्यागों। जो यहां कामों को छोड़कर, गृह-विहीन हो परिव्राजक हो जाता है, जिसके काम भोग और जन्म नष्ट हो गए हैं, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कह भगवान ने जेतवन में विहरते समय यह गाथा कही—

415. योध कामे पहत्वान, अनागारो परिब्बजे।
कामभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.33।।

***अर्थ** : जो यहां भोगों को छोड़, बेघर हो प्रव्रजित हो गया है, जिसके भोग और जन्म नष्ट हो गए हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

शब्दार्थ : कामे = वासनाओं। **अनागारो** = गृहविहीन होकर। **परिब्बजे** = प्रव्रजित हो जाता है।

वग्ग 26, गाथा 34

तृष्णा तथा जन्म-नष्ट ब्राह्मण है

(जटिल की कथा, स्थान—वेणुवन)

416. कस्सप बुद्ध के परिनिर्वाणोपरान्त, एक अर्हत् थेर कस्सप बुद्ध की धातुओं पर स्तूप निर्माण के लिए दान प्राप्त करने के लिए विहर रहे थे। वे विहरते हुए एक सुनार के घर पहुंचे, उस समय इस गृहस्थी में भयंकर कलह चल रही थी। सुनार थेर पर गुस्सा करते हुए बोला, "भाड़ में जाय तुम्हारा स्तूप और भाड़ में जाओ तुम।" तब उसकी पत्नी ने कहा, "अगर तुम मुझ पर क्रोधित हो, तो मुझ पर गुस्सा निकालो, मुझे अपशब्द कहो, मुझे पीट सकते हो, जैसा भी तुम चाहो मेरे साथ बदसलूकी कर सकते हो, परन्तु तुम बुद्ध और थेर को क्यों अपशब्द कह रहे हो ? निश्चय ही तुम गम्भीर पाप कर रहे हो।" पत्नी के ऐसा कहने पर सुनार को अपनी गलती का अहसास हुआ और उसने सोने की धातु के तीन फूल बनाकर, सोने के पात्र में सजाकर कस्सप बुद्ध की धातु पर रखने के लिए भेंट किये।

इस भव में उसने एक धनी व्यक्ति की लड़की की कोख में जन्म ग्रहण किया था, परन्तु उसके जन्मते ही उसे पात्र में रखकर नदी में बहा दिया गया था। नदी पर बहते हुए उसे एक औरत ने देखा और अपने घर ले आयी। उसने अपनी सन्तान के साथ उसका पालन-पोषण किया। उसने इसका नाम **जटिल** रखा। बाद में एक थेर की सलाह पर उस औरत ने जटिल को शिक्षा-दीक्षा के लिए तक्षशिला भेजा। अध्ययन के दौरान जटिल के आवास की व्यवस्था तक्षशिला में एक

व्यापारी के घर पर की गयी। उस व्यापारी की लड़की से ही जटिल का विवाह हो गया। शादी के बाद वे अपना नया घर बना रहे थे, तो घर के पिछवाड़े में उन्हें बहुत सारा सोना मिला। उसे अपने वैवाहिक जीवन में तीन पुत्र प्राप्त हुए। वह बहुत धनवान व्यक्ति हो चुका था। उसने अपने तीनों पुत्रों को धनसम्पति सौंपकर राजा से आज्ञा ले प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। कुछ ही दिनों में जटिल ने अर्हत्त्व पद पा लिया।

एक समय जटिल व पांच सौ भिक्खुओं के साथ भगवान बुद्ध भिक्खाटन करते हुए जटिल के गांव गए और जटिल के पुत्रों के घर भी भिक्खाटन किया। जटिल के पुत्रों ने भगवान बुद्ध, भिक्खुसंघ आदि को पन्द्रह दिन तक भोजनदान दिया। कुछ समय बाद भिक्खुओं ने जटिल से पूछा कि क्या अभी उसकी सोने के ढेर में तृष्णा है या नहीं ? इस पर उसने कहा उसकी सोने या पुत्रों आदि में अब किसी भी प्रकार की तृष्णा नहीं रह गयी है। भिक्खुओं ने उसे असत्य जान भगवान से पूछा। भगवान ने उनकी बात सुनकर कहा, "भिक्खुओ ! मेरे पुत्र की उनके प्रति तृष्णा या मान नहीं है।" कहकर उपदेश देते हुए कहा, "जो यहां तृष्णा को छोड़कर गृहविहीन हो प्रव्रजित हुआ है, जिसकी तृष्णा और जन्म नष्ट हो गए हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" शास्ता ने वेणुवन में यह गाथा कही—

जोतिय (जोतिक) नामक एक अतिधनवान राजगृह में अति रमणीय (सात-मंजिले) प्रासाद में रहता था। उसके प्रासाद के चारों ओर सात दीवारें थीं, जो सदैव द्वारपालों द्वारा रक्षित थीं। उसके धन-वैभव की चर्चा दूर-दूर तक थी और बहुत से लोग उस प्रासाद को देखने आया करते थे। एक समय राजा बिम्बिसार भी अपने पुत्र अजातशत्रु के साथ जोतिय से मिलने गए। अजातशत्रु ने उसके भव्य प्रासाद को देखकर मन में ठान ली कि जब भी वह राजा बनेगा, यह प्रासाद जोतिय से छीन कर वह अपने कब्जे में ले लेगा। जोतिय ने राजा व अजातशत्रु को तथा उसके अनुचरों को बहुमूल्य रत्नों का उपहार दे विदा किया।

जब अजातशत्रु राज सिंहासन पर बैठा, तब उसने अपने सैनिकों को जोतिय के प्रासाद पर धावा बोलने का आदेश दिया। अजातशत्रु और उसके सैनिकों का जोतिय के प्रासाद के रक्षकों के साथ कड़ा मुकाबला हुआ, अजातशत्रु उसे प्राप्त करने में असमर्थ रहा। उसने वहां से वेणुवन विहार की ओर कूच किया, जहां पर जोतिय भगवान के सामने बैठा धम्म-श्रवण कर रहा था। वहां जाकर अजातशत्रु बोला, "अपने रक्षकों को मुझसे लड़ने के लिए कहकर यहां आकर धम्म श्रवण का उपक्रम कर रहे हो।" जोतिय को समझने में देर नहीं लगी कि राजा उसके प्रासाद को शक्तिबल से अधिग्रहित करने गया होगा।

जोतिय ने राजा को कहा, "राजन् ! मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरी सम्पत्ति को नहीं लिया जा सकता है।" ऐसा कहते हुए उसने अपने दोनों हाथों की अंगुलियां आगे करते हुए कहा कि उसकी अंगुलियों में पहनी हुई अंगूठियों को वह बलात नहीं ले सकता है।" राजा ने उसकी अंगुलियों में से अंगूठियों को निकालने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु वह उसमें सफल नहीं हो सका। तब

जोतिय ने एक कपड़ा फैलाने को कहा और उसने अपनी अंगुलियों को उस पर रखा। हाथ में पहनी हुई सभी अंगूठियां स्वतः फिसलकर निकल गयीं।

बाद में जोतिय ने अपनी सारी अंगूठियां राजा अजातशत्रु को दे दीं और भगवान बुद्ध से उपसम्पदा की विनती की। वह प्रव्रजित हो भिक्खु बन गया और शीघ्र ही उसने अर्हत्त्व प्राप्त किया, और वह जोतिय स्थविर के नाम से सिद्ध हुआ। उसके अर्हत्त्व प्राप्ति के साथ ही उसकी सारी सम्पत्ति अन्तर्धान हो गयी और उसकी पत्नी उत्तर कुरु चली गयी।

एक दिन भिक्खुओ ने जोतिय थेर को आमन्त्रित कर कहा, "आवुस ! क्या तुम्हें उस प्रासाद, स्त्री या धन में तृष्णा है ?" थेर जोतिय का जवाब था, "नहीं है आवुसो ! उसमें अब कोई तृष्णा बाकी नहीं है।" भिक्खु भगवान के पास गए और सारा वृतान्त सुनाते हुए बोले, "भन्ते ! यह झूठ बोलकर अर्हत्त्व प्राप्ति को प्रगट कर रहा है।" तब शास्ता ने कहा, "भिक्खुओ ! मेरे पुत्र को उसमें तृष्णा नहीं है। उसमें अब किसी प्रकार की तृष्णा नहीं रह गयी है, अब इसका पुर्नजन्म सम्भव नहीं है। यह अर्हत बन गया है, यह ब्राह्मण बन गया है। जो यहां तृष्णा को छोड़, बेघर हो प्रव्रजित हुआ है, जिसकी तृष्णा और जन्म नष्ट हो गए हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

416. यौध तण्हं पहत्वान, अनागारो परिब्बजे।
तण्हाभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.34।।

अर्थ : जो यहां तृष्णा को छोड़, बेघर हो प्रव्रजित हुआ है, जिसकी तृष्णा और जन्म नष्ट हो गए हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

शब्दार्थ : **इध** = इस संसार में। **यो** = जो। **कामे** = कामभोगों को। **पहत्वा** = छोड़कर। **अनागारो** = बेघर हो। **परिब्बजे** = प्रव्रजित हो गया है। **कामभव** = काम-भोगों को। **परिक्खीणं** = नष्ट कर चुका है। **तं** = उसे।

वग्ग 26, गाथा 35-36

बन्धन-मुक्त ब्राह्मण है

(नटपुत्र की कथा, स्थान—वेणुवन)

417-418. एक बार नाच-गान करने वाले एक नटपुत्र ने उपसम्पदा ले, प्रव्रजित हो ध्यान-विपश्यना में लीन होकर अर्हत्त्व को प्राप्त किया। दूसरे भिक्खुओं ने देखा कि जो सदैव आनन्द-प्रमोद और रति आदि में रत रहता था, वह अर्हत्त्व प्राप्ति का झूठा दम्भ भर रहा है। अतः भगवान से उसके बारे में पूछा गया। तब भगवान ने शंका निवारण करते हुए कहा, "भिक्खुओ ! नरपुत्तक ने अर्हत्त्व प्राप्त कर लिया है, यह सत्य ही कह रहा है। मेरा पुत्र सब योगों को छोड़ चुका है। यह शान्त चित्त और क्लेशरहित हो गया है। अब यह वैसा नहीं रहा है, ऐसा भिक्खु तो ब्राह्मण कहा जाता है।" इसने मानवीय और दिव्य बन्धनों को तोड़ दिया है और "जो मानुषिक योग (आसक्ति) को छोड़कर, दिव्य योग को भी दूर कर जो सभी योगों (आसक्तियों) से असम्प्रक्त है, अर्थात् उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने ये गाथा कही—

417. हित्वा मानुसकं योगं दिब्बं योगं उपच्चगा।
सब्बयोगविसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं। 26.35।।

अर्थ : जो मानुषी बन्धनों को छोड़, दिव्य बन्धनों को भी छोड़ चुका है, जो सभी बन्धनों से रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

शब्दार्थ : **मानुसकं** = मानुषी अर्थात मनुष्य में छिपे हुए। **योगं** = बंधनों। **हित्वा** = छोड़ चुका है। **दिब्बं** = दिव्य अर्थात अलौकिक। **योगं** = बंधनों को। **उपच्चगा** = त्याग चुका है। **सब्ब** = सभी। **योग** = बंधनों से। **विसंयुत्तं** = अनासक्त अर्थात रहित। **तं** = उसे। **अहं** = मैं। **ब्राह्मणं** = ब्राह्मण। **ब्रूमि** = कहता हूं।

418. हित्वा रतिञ्च अरतिञ्च सीतिभूतं निरूपधिं।
सब्बलोकाभिभुं वीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.36।।

अर्थ : रति और अरति को छोड़ जो शान्त और क्लेश रहित है, (जो ऐसा) सर्वलोक विजयी वीर है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

वग्ग 26, गाथा 37-38

अर्हत् ब्राह्मण है

(वंगीस थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

419-420. एक समय राजगृह में वंगीस नामक एक ब्राह्मण मरे हुए व्यक्तियों की खोपड़ी को खट-खटाकर ठोक-ठोक कर उनके उत्पत्ति के स्थान देव, मनुष्य, अपाय आदि स्थान बतलाता था। ब्राह्मण उसे लेकर नगर-नगर घूमते और लोग अपने मरे हुए सम्बंधियों के पुनर्जन्म को जानने के लिए उसे धन देते थे और वह उन्हें उनका उत्पत्ति स्थान (योनि) बतलाता था। ब्राह्मण उसके सहारे खाते-पीते थे।

एक बार ये लोग उसे लेकर सावत्थि आए और लोगों को वंगीस के पास आने को कहा कि यह तुम्हारे पुरखों का, सम्बंधियों का पुनर्जन्म बतायेगा। आप इसके पास आकर पूछो, परन्तु लोगों ने "वंगीस क्या है, शास्ता के सामने" कहकर उधर ध्यान ही नहीं दिया और वे शास्ता के पास चले गए। ब्राह्मणों ने लोगों के इस कथन को कि हमारे शास्ता के सामने वंगीस क्या है, अपनी चुनौती समझा और वे वंगीस को लेकर जेतवन विहार पहुंच गए।

भगवान ने उनके आगमन को जान एक भिक्खु को निरय योनि, पशु योनि, मनुष्य लोक और देवलोक में उत्पन्न हुए व्यक्तियों की खोपड़ी के साथ एक अर्हत् की खोपड़ी भी मंगायी और उन पांचों खोपड़ियों को एक कतार में रखकर वंजीस से पूछा, "वंगीस ! तूं इन्हें बतला सकता है कि ये कहां उत्पन्न हुए है ?" वंगीस ने "हां बता सकता हूं।" कह कर चार को क्रमशः बता दिया, किन्तु पांचवीं पर वह चुप हो गया। तब भगवान ने कहा, "वंगीस ! इसे तू नहीं जानता है, किन्तु मैं जानता हूं।" तब वंगीस भगवान से बोला, "हे श्रमण ! मुझे भी उस मन्त्र को बतलाइये, जिससे मैं भी जान सकूं।" भगवान ने कहा, "वंगीस ! बिना प्रव्रजित हुए को मैं नहीं बताता।"

भगवान की बात सुन, "मैं इस मन्त्र को थोड़े ही दिन में सीख कर सर्वज्ञाता हो जाऊंगा।" सोच भगवान के पास प्रव्रजित हो गया। उसने शीघ्र ही थोड़े दिनों में अर्हत्त्व पद पा लिया। एक दिन उसके साथ वाले ब्राह्मणों ने आकर जब उससे चलने को कहा, तब वह बोला, "तुम लोग जाओ, अब मैं जाने योग्य नहीं।" अन्य भिक्खुओं ने जब ऐसा सुना तो यह सोचकर कि बंगीस झूठ बोल रहा है। भगवान से कहा। शास्ता जेतवन विहार में विहरते थे, वे बोले, "भिक्खुओ ! इस समय मेरा पुत्र च्युति और उत्पत्ति को भली प्रकार जानता है। जब तक यह नहीं जानता था, इसकी आसक्ति थी, परन्तु अब यह आसक्ति रहित है। यह क्षीणास्रव है, अर्हत है, ब्राह्मण है।" जो सत्त्वों की च्युति (मृत्यु व विनाश) और उत्पत्ति को सभी प्रकार से अर्थात् भली प्रकार से जानता है और जो आसक्ति रहित सुगत (अच्छी तरह से गया व सुन्दर गति को प्राप्त) और बुद्ध (ज्ञानी) है, "उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" "भिक्खुओ ! जिसकी गति को देवता, गन्धर्व और मनुष्य नहीं जानते हैं तथा जो क्षीणास्रव और अर्हत् है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने ये गाथाएं कहीं—

419. चुतिं यो वेदि सत्तानं उपपत्तिञ्च सब्बसो।
असत्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.37।।

अर्थ : जो प्राणियों की च्युति (=मृत्यु) और उत्पत्ति को भली प्रकार जानता है, जो आसक्ति रहित सुगत (सुन्दरगति को प्राप्त) और बुद्ध (=ज्ञानी) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

420. यस्स गतिं न जानन्ति देवा गन्धब्बमानुसा।
खीणासवं अरहन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.38।।

***अर्थ** : जिसकी गति को देवता, गन्धर्व और मनुष्य नहीं जानते, जो क्षीणास्रव और अर्हत् है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।*

वग्ग 26, गाथा 39

अकिंचन ब्राह्मण है

(धम्मदिन्ना थेरी की कथा, स्थान—वेणुवन)

421. एक समय राजगृह में **विशाख** नामक एक उपासक था। जब भगवान वेणुवन में विहरते थे, उस समय उसने भगवान का उपदेश सुन अनागामी फल को प्राप्त कर घर आकर अपनी पत्नी से कहा "मैं प्रव्रजित होऊंगा। आर्ये! तुम सम्पत्ति ले लो। आज से मैं घर-गृहस्थी के सारे सरोकारों से अपने को दूर रखूंगा। मैं गृहत्याग करूंगा। तुम सारी सम्पत्ति लेकर अपने घर चली जाओ।" उसकी पत्नी का नाम **धम्मदिन्ना (धर्मदत्ता)** था। वह बोली, "जी नहीं ! मैं आपके यहां से नहीं जाऊंगी..... जिसे तुम थूक कर फेंक रहे हो, उसे कौन लेगा ?" विशाख बोला, "फिर क्या करोगी?" धम्मदिन्ना ने कहा, "आप मुझ पर एक उपकार करेंगे।" विशाख ने "अवश्य" कहकर उसका समर्थन किया।

धम्मदिन्ना ने प्रव्रज्या की आज्ञा मांगी। विशाख ने उत्सव कर उसे प्रव्रज्या दिलायी। वह हर्ष,

उल्लास तथा उत्साह से धम्मदिन्ना को भिक्खुणीसंघ में लाया। धम्मदिन्ना प्रव्रजित हुई। धम्मदिन्ना ने भगवान का उपदेश सुन अनागामी फल को पाया और भिक्खुणी संघ के साथ विहार में रहने लगी। कुछ समय बाद वह संघ से आज्ञा ले एक छोटे से गांव के विहार में ध्यान विपश्यना करने चली गयी। थोड़े समय में ही उसने उद्यम कर अर्हत्त्व को प्राप्त कर लिया।

अर्हत्त्व प्राप्त कर धम्मदिन्ना जब वापस राजगृह लौटी, तो एक दिन विशाख ने उसके पास जाकर चूल वेदल्ल में आए हुए प्रश्नों को पूछा। धम्मदिन्ना ने उन सभी प्रश्नों का उत्तर दिया। उनमें से कुछ प्रश्नोत्तर इस तरह के थे.....

"आर्ये ! सत्काय क्या है ?"

"रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान उपादान स्कन्ध हैं, इनको भगवान ने सत्काय कहा है।"

"सत्काय दृष्टि क्या है ?"

"आवुस! आर्यों के दर्शन से वंचित, आर्य धर्म से अपरिचित, अविनीत, सत्पुरुषों के दर्शन से वंचित, सत्पुरुषों से अविनीत, अज्ञ, पृथक्जन, पुरुष रूप को आत्मा देखती है। रूपवान को आत्मा देखती है। आत्मा में रूप देखता है। रूप में आत्मा देखती है। वेदना को आत्मा देखती है, संज्ञा. ....., संस्कार....., विज्ञान को आत्मा देखती है। यह सत्काय दृष्टि है।"

" आर्य आष्टांगिक मार्ग संस्कृत है या असंस्कृत ?"

"संस्कृत है, विशाख।"

इस प्रकार विशाख ने प्रथम तीनों मार्ग के बारे में पूछा और धम्मदिन्ना ने उसे सन्तुष्ट किया, सम्यक उत्तर दिया, परन्तु जब उसने अर्हत् मार्ग और अर्हत् फल पर प्रश्न किया तो वह बोली, "उपासक ! यह तुम्हारी सूक्ष्म बुद्धि से परे है, निर्वाण पर्यवसान है।" अगर इच्छा हो तो जाकर शास्ता से भी इन प्रश्नों को पूछना।"

विशाख भगवान के पास गया, जाकर प्रणाम कर सब वृतान्त सुनाया। भगवान ने कहा, "मेरी पुत्री धम्मदिन्ना ने सब ठीक कहा है, मैं भी इन प्रश्नों का यही उत्तर देता। विशाख ! धम्मदिन्ना पण्डिता है, महाप्रज्ञा है, उसने अर्हत्त्व को पा लिया है, वह ब्राह्मण है। जिसके आगे, पीछे अथवा मध्य में कुछ भी नहीं है, यह अकिंचन और अपरिग्रही है और जिसके पूर्व, पश्चात् और मध्य में कुछ नहीं है, जो किंचन और परिग्रह रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने वेणुवन में यह गाथा प्रकाशित की—

421. यस्स पुरे च पच्छा च मज्झे च नत्थि किञ्चनं।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.39।।

अर्थ : जिसे पूर्व, पश्चात् और मध्य में कुछ नहीं है, जो अकिंचन और परिग्रह-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

शब्दार्थ : यस्स = जिसके। **पुरे च** = पूर्व अर्थात भूतकाल। **पच्छा च** = पश्चात अर्थात भविष्य में। **मज्झे च** = मध्य में अर्थात वर्तमान में। **किञ्चनं नत्थि** = कुछ भी नहीं अर्थात दोष नहीं। **अकिञ्चनं** = दोष रहित। **अनादानं** = संग्रह रहित अर्थात दोषों का संग्रह न करने वाला। **तं** = उसे। **अहं** = मैं। **ब्राह्मणं** = ब्राह्मण। **ब्रूमि** = कहता हूं।

वग्ग 26, गाथा 40

अकम्प्य ब्राह्मण है

(अंगुलिमाल थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

422. एक बार राजा पसेनदि और महारानी मलिका ने बड़े पैमाने पर भगवान सहित भिक्खुसंघ को भोजनदान पर आमन्त्रित किया। यह बहुत बड़ा भव्य आयोजन था और प्रत्येक भिक्खु के पीछे एक-एक हाथी सूंड में सफेद चंवर पकड़े भिक्खुओं पर छाया किए थे। इन सभी हाथियों में चार सौ निन्यानवे तो प्रशिक्षित हाथी थे। परन्तु एक अप्रशिक्षित हाथी था। उस हाथी को भिक्खु अंगुलिमाल के ऊपर छाया करने निमित्त चंवर पकड़ा कर खड़ा कर दिया गया था। चूंकि हाथी प्रशिक्षित नहीं था, अतः सभी सहमे हुए थे और सभी को आशंका थी कि कहीं हाथी गड़बड़ी नहीं कर दे। परन्तु हाथी को ज्योंही अंगुलिमाल के पास ले जाया गया, वह बिलकुल ही संयत होकर बैठा रहा।

भिक्खुओं ने जब इस सम्बंध में अंगुलिमाल को पूछा कि क्या उसे उस हाथी से डर नहीं लगा, जो कि अप्रशिक्षित और उद्दण्ड था। अंगुलिमाल ने उन्हें बताया उसे तो तनिक भी भय नहीं लगा। उसने भय-भार को उतार फेंका है, उसकी तृष्णाएं शान्त हो गयी हैं, वह अब निर्भय है। भिक्खुओं ने यह जान शास्ता से कहा, "भगवान। अंगुलिमाल अर्हत्त्व प्राप्ति को बतला रहे हैं।" उसे सुन शास्ता ने कहा, "भिक्खुओ ! मेरा पुत्र अंगुलिमाल नहीं डरता है, यह क्षीणास्रव है। ऋषियों के बीच ज्येष्ठ ऋषभ (सांड) है, मेरे पुत्र के समान भिक्खु नहीं डरते हैं। और जो ऋषभ (मनुष्यों में श्रेष्ठ), प्रवर, वीर, महर्षि, विजेता, निडर, स्नातक और बुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा जेतवन विहार में प्रकाशित की—

422. उसभं पवरं वीरं, महेसिं विजिताविनं।
अनेजं नहातकं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 26.40।।

अर्थ : जो ऋषभ, प्रवर, वीर, महर्षि, विजेता, अकम्प्य, स्नातक और बुद्ध हैं, उन्हें मैं ब्राह्मण कहता हूं।

शब्दार्थ : **उसभं** = बैल अर्थात उत्तम। **पवरं** = प्रवर अर्थात आदर्श। **महेसिं** = महर्षि। **विजिताविनं** = विजेता अर्थात जिसने अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण किया हुआ है। **अनेजं** = अकम्प्य अर्थात जो तृष्णा के वशीभूत विचलित नहीं होता। **नहातकं** = स्नातक अर्थात जिसने बुराइयों को धोकर बहा दिया है। **बुद्धं** = अतिशय जागरूक। **तं** = उसे। **अहं** = मैं। **ब्राह्मणं** = ब्राह्मण। **ब्रूमि** = कहता हूं।

वग्ग 26, गाथा 41

प्रज्ञा-पूर्ण ब्राह्मण है

(देवहित ब्राह्मण कथा, स्थान—जेतवन)

423. एक बार जेतवन विहार में विहरते समय भगवान को वायु-रोग हुआ। शास्ता ने उपवान

स्थविर को गर्म जल लाने के लिए देवहित ब्राह्मण के पास भेजा। ब्राह्मण ने इसे अपने लिए स्वर्णिम अवसर मानते हुए उसे गर्म पानी भी दिया और साथ में राब भी लेकर आया। थेर ने विहार में आकर राब को गर्म जल में घोलकर भगवान को दिया, उसे पीते ही शास्ता का रोग शान्त हो गया। देवहित ब्राह्मण ने तब आकर भगवान से पूछा, "भन्ते ! किसे दिया हुआ दान महाफलवान होता है ?" भगवान ने तब कहा, "जो पूर्व भव को जानता है, जिसने इस लोक और परलोक को देख लिया है, स्वर्ग-नरक को जान लिया है और जिसका पुनर्जन्म क्षीण हो चुका है, जिसकी प्रज्ञा पूर्ण है और अपना सब कुछ कर लिया है, उसको दिया हुआ दान महाफलवान होता है।" और "देवहित ! जो पूर्व जन्म को जानता है, स्वर्ग और नरक को देखता है, जन्म क्षय को प्राप्त हो चुका है, अभिज्ञा में पूर्ण है, मुनि है तथा सभी पूर्णताओं को जिसने पूरा कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

423. पुब्बेनिवासं यो वेदि, सग्गापायञ्च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावेसितो मुनि।
सब्बवोसितवोसानं, तमहं ब्रुमि ब्राह्मणं।। 26.41।।

अर्थ : जो पूर्व जन्म को जानता है, स्वर्ग और अगति (=अपाय) को जिसने देख लिया है, जिसका पुनर्जन्म क्षीण हो चुका है, जिसकी प्रज्ञा पूर्ण हो चुकी है, जिसने अपना सब कुछ पूरा कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

शब्दार्थ : पुब्बेनिवासं = पूर्व जन्म। **सग्गापायञ्च** = स्वर्ग अैर नरक को। **पत्तो** = प्राप्त हुआ। **अभिञ्ञवोसितो** = अभिज्ञा (प्रज्ञा) में व्यवसित (पूर्ण)। **सब्बवोसितवोसानं** = सर्वव्यवसित (सभी पूर्णताओं को पूर्ण करने वाले को। **यो मुनि** = जो मुनि अर्थात सन्त। **पुब्बेनिवासं** = पूर्व जन्म को। **वेदि** = जानता है। **सग्गापायञ्च** = स्वर्ग और नरक अर्थात सुवर्ग और बुरी गति। **पस्सति** = देखता है। **अथो** = इसके अलावा। **जातिक्खयं** = पुनर्जन्म क्षीण। **पत्तो** = हो चुका है अर्थात जिसका पुनर्जन्म खत्म हो चुका है। **अभिञ्ञा** = उच्चतम ज्ञान। **वोसितो** = पूर्ण हो चुका है। **मुनि** = मुनि। **तं** = उस। **अहं** = मैं। **ब्राह्मणं** = ब्राह्मण। **ब्रूमि** = कहता हूं।

बुद्ध वचन

तुम शेर के सामने जाते समय भयभीत न होना,
यह बहादुरी की परीक्षा है।
तुम तलवार के सामने जाते समय भयभीत न होना,
यह त्याग की कसौटी है।
तुम पर्वत शिखर से पाताल में कूदते हुए भयभीत न होना,
यह तप की कसौटी है।
तुम बढ़ती ज्वालाओं के सामने जाते समय भयभीत न होना,
यह स्वर्ण परीक्षा है।
लेकिन शराब से सदा भयभीत रहना, क्योंकि यह बुराई,
गरीबी और दुराचार की जननी है

–भगवान बुद्ध

DHAMMAPADA
Prose & Stories

Tararam

सम्यक प्रकाशन
32/3, पश्चिम पुरी, नई दिल्ली–110063
मो. : 9810249452, 9818390161
Email : hellosamyak1965@gmail.com Web : www.samyakprakashan.in

धम्मपद

गाथा और कथा

बौद्ध
पुनर्जागरण
स्वर्ण जयंती
माला

सम्यक
प्रकाशन

तारारम